नक्षत्र-तिथि विचार-विमर्श

– मुनि कृपाबोधिविजयजी म.सा.

॥ शासनपति श्री महावीरस्वामिने नमः ॥ ॥ श्री धर्मनाथस्वामिने नमः ॥
नमो नमः श्री गुरु प्रेम-भुवनभानु-पद्म-जयघोष-राजेन्द्र-हेमचन्द्र-संयमबोधिसूरीशेभ्यः

नक्षत्र-तिथि विचार-विमर्श

(जैन–वैदिक तथा वैज्ञानिक मान्यता आधारित चिंतन)

परामर्शदाता

पू. आचार्य श्री जयसुन्दरसूरीश्वरजी म.सा.

संकलन-चिन्तन

पू. आचार्य श्री संयमबोधिसूरीश्वरजी म.सा. के
शिष्य **पू. मुनि कृपाबोधिविजयजी म.सा.**

प्रकाशक-प्राप्ति स्थल

जैनम् परिवार

22, नाकोडा पार्क, सिनेप्राईडनी गलीमां, कृष्णनगर-नरोडा रोड,
अमदावाद-382 346, मो. 89801 21712

पुस्तक का नाम	:	**नक्षत्र-तिथि विचार-विमर्श**
आधार ग्रन्थ	:	**सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष करण्डक, मण्डल प्रकरण, ठाणांग सूत्र आदि**
अन्य ग्रन्थ	:	**वेदांग ज्योतिष, सूर्यसिद्धान्त, Ephemeris Data आदि**
भाषा	:	**हिन्दी**
प्रकाशन तारीख	:	**5-11-2021**
संकलन-चिन्तन	:	**प.पू.मुनिराज श्री कृपाबोधिविजयजी म.सा.**
अनुवाद	:	**पवनकुमार बैद**
अनुवाद सौजन्य	:	**श्री पो. हे. जैननगर जैन संघ**
विषय	:	**जैन ग्रन्थ, अन्य ग्रन्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नक्षत्र तथा तिथि की मान्यता के सन्दर्भ में गहरा संशोधन**
संशोधित आवृत्ति	:	
प्रतियाँ		**500**

मूल्य : **200**

पुस्तक प्रकाशन के लाभार्थी

श्री मरचन्ट सोसायटी जैन संघ के

ज्ञाननिधि में से उदार दिल से लाभ लिया है

अनुमोदना...अनुमोदना...

प्रकाशकीय

भारतीय संस्कृति के उत्थान में जैन संस्कृति का योगदान विशिष्ट और काफी महत्वपूर्ण रहा है ।

सर्वज्ञ भगवान महावीरस्वामी तथा उनके पूर्ववर्ती पार्श्वनाथ वगेरे २३ तीर्थंकर भगवंतो के केवलज्ञान के प्रकाश में प्रतिबिंबित हुए विश्व के सत्य पदार्थों का संग्रह यानी जैन आगम तथा तत्पश्चातवर्ती ग्रंथ । ज्ञान की सभी शाखाए जैसे की भूगोल, खगोल, जीवविज्ञान, कर्मविज्ञान, परमाणुविज्ञान आदि का तलस्पर्शि ज्ञान जिनआगमों में मिलता है ।

❧ जैन ग्रंथ वास्तविकता का प्रतिपादन पूर्णरूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं ।

❧ तथा उस समय के अन्यदर्शन भी जैनदर्शन के बहुत से पदार्थों का समर्थन करते है ।

❧ प्रस्तुत पुस्तक में खगोल (ग्रहादि के चार संबंधित) विषय के नक्षत्रगणित–तिथिगणित इन दो मुख्य विषय पर विचार विमर्श किया गया है ।

पंचांग शुद्धि, मुहूर्तशुद्धि के लिए भारतीय संस्कृति, शुरूआत से ही जागृत थी इसी के कारण वैदिक परंपरा, जैन परंपरा आदि आर्य परंपराएं,

a. असमानमाप के नक्षत्र विभाग से तथा

b. समान माप की तिथी से मुहूर्तशुद्धि मानती थी, उसे सूक्ष्म गणित से तैयार करते थे जिसे वेदांगज्योतिष तथा जोहेनेस केप्लर वैज्ञानिकके नियमों का भी समर्थन था ।

पर ग्रीक–यवन संस्कृति के आक्रमण से प्रभावित हुई भारतीय संस्कृति में **समानमाप के नक्षत्र तथा असमान माप की तिथि की स्थूल गणित की परंपरा शुरु हुई ।**

❧ भारतीय संस्कृति मान्य पंचांग परंपरा को पुनर्जिवीत करने हेतु यह संशोधन ग्रंथ है ।

संस्कृति प्रेमी भारतीय सरकार और अन्य संस्कृतिरक्षक संस्थाओं ऐसे सूक्ष्म और शुद्ध प्राचीन तथ्योंको अमलमें लानेकी कोशिश करे जिससे भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपराका विश्व में गौरव बढे ।

इसलिए `एक देश एक पंचांग' की दिशा में आगे बढने का सोचे और प्राचीन तथ्यों को उजागर कर निष्पक्ष सत्यतत्व को स्थापित करें ऐसी विद्वज्जनों को करबद्ध प्रार्थना ।

लिखितम्

जैनम् परिवार का प्रणाम

प्रस्तावना ....

वैशाख शुक्ल 10 को परमात्मा महावीर देव को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। जगत के समस्त पदार्थ और उनके समस्त पर्याय प्रभु के ज्ञान में सहज प्रतिबिम्बित हुए। सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रों की अगम्य गति प्रभु के ज्ञान में स्पष्ट रूप से गोचर थी और उसी केवलज्ञान में प्रतिभासित ज्ञान का आंशिक प्रतिबिम्ब गणधरों और पूर्वधरों के श्रुतज्ञान में भी प्रतिबिम्बित हुआ। प्रभु ने अर्थ दर्शाया और गणधरों एवं उनकी परम्परा में आए पूर्वधरों ने उस अर्थ को अंग आगम और उपांग आगम रूपी सूत्रों के धागे में पिरोकर सुरक्षित रखा।

गणधरों और पूर्वधरों के श्रीमुख से गूँथे हुए सूत्रों के पवित्रतम और रहस्यपूर्ण धागों का समूह ही श्री ठाणांग सूत्र, श्री सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र, ज्योतिषकरंडक आदि है।

वांचन में सहज माने जाने वाले इन सूत्रों का अर्थ गहन है, और ये अनेक त्रैकालिक सत्य को अपने अन्दर छिपाए बैठे हैं।

- किन्तु दुर्भाग्य यह है, **कि इन सूत्रों के सागर में डुबकी मारने की जिज्ञासा आज कम हो चुकी है,**
- **सूत्र-सागर की गहराई में स्थित रत्नों को खोजने की संशोधक वृत्ति आज लुप्त हो रही है,**
- **सूत्र-सागर की विशालता और गहराई को स्वीकार करने वाली मध्यस्थ दृष्टि आज धुँधली पड़ चुकी है।**

बाकी सामाजिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि को केन्द्र में रखकर होने वाला अभ्यास जीव को श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, सन्त और सर्वज्ञ भी बनाता है।

- गणितानुयोग का ज्ञान आज भी लुप्त नहीं हुआ, **किन्तु उसके सचोट अर्थघटन द्वारा सर्वज्ञ की सर्वज्ञता की यशोपताका को विश्वपटल पर लहराने वाले विद्वान आज लुप्त हुए हैं।** लगभग उपेक्षित हो चुके इन ग्रन्थों के पदार्थ आधुनिक यूरोपीय ग्रहादि गणित को दिशा दिखाने की क्षमता रखते हैं, और जिनशासन के अनेक अभ्यन्तर प्रश्नों के सन्तोषप्रद समाधान प्रकट करने में समर्थ हैं।

- **ये सभी समाधान जन-कल्याणकारी और आत्म-हितकारी भी हैं,**
- **ये समाधान संघर्ष और संक्लेश नाशक होने के साथ शासनोन्नतिकारक भी हैं,**
- **ये सभी समाधान जिनशासन की अभ्यन्तर व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में सक्षम तो हैं ही, तथा साथ ही बाह्य आक्रमणों को दूर करने में भी समर्थ हैं ।**
- **ये समाधान संघ, साधु और साधर्मिक वात्सल्य की पूर्ति करने वाले, और साथ ही सम्यग्दर्शन की शुद्धि करने वाले हैं ।**

इसीलिए इस विषय के संशोधन में निष्पक्ष, शासनरसिक गीतार्थ विद्वानों की जागरूकता अत्यन्त आवश्यक है ।

- मन्दक्षयोपशम धारक मुझ पर अचानक देव और गुरु की कृपा हुई और मार्गानुसारी दृष्टि खिलती गई ।
- मुझे ऐसा संकेत हुआ, कि मेरे **सांसारिक पिताजी समाधिमरण** प्राप्त करने के बाद चन्द्र विमान में उत्पन्न हुए हैं इसलिए उस संकेत ने ज्योतिष देवों की जानकारियों से भरपूर गणितानुयोग के ग्रन्थों के प्रति मेरा सहज आकर्षण जगाया । दिव्यात्मा **स्व. पिताजी** की दिव्य कृपा हुई और उसमें पूज्यपाद स्व. गच्छाधिपतिश्री आचार्यदेव श्रीमद् **विजयजयघोषसूरीश्वरजी** म.सा. तथा प.पू. वैराग्यदेशनादक्ष दादा गुरुदेव आचार्यदेव श्रीमद् **विजय-हेमचन्द्रसूरीश्वरजी** म.सा. की वचनलब्धि मिली कि, **``तू जैन गणित का अनुसरण करने वाला पंचांग बना ।''** बस इसी बल पर शुरू हुई संशोधन यात्रा आज चौथे चरण से भी आगे पहुँची है ।

प्रथम चरण **``जैन आगमिक गणित आधारित पंचांग प्रक्रिया''** के स्वरूप में प्रस्तुत हुआ, दूसरा चरण–**मंडल प्रकरण-पदार्थ प्रकाश-२५**
तीसरा चरण **``नक्षत्र मीमांसा''** के रूप में प्रस्तुत हुआ, और
चौथा चरण **``तिथि मीमांसा''** के रूप में प्रस्तुत हुआ ।
तिथि मीमांसा पुस्तक में :–

1) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तिथि के साथ समन्वय,**
2) **``क्षये पूर्वा'' के प्रघोष के सन्दर्भ में ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय दृष्टिकोणपूर्वक कीगई विचारणा और उसका मार्गानुसारी अर्थ, तथा**

3) **टाणांग सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र तथा वेदांग ज्योतिष की प्राचीन मान्यताओं के तुलनात्मक अभ्यासपूर्वक की गई तिथि की मान्यता** को मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मुझे विश्वास है, कि **निष्पक्ष गीतार्थ** तथा **तिथि प्रकरण के निष्पक्ष जानकार** इस पुस्तक का **मध्यस्थ दृष्टिकोण से पठन करेंगे तो जैन पंचांग का पुनर्जीवन होकर ही रहेगा।**

⚜ प्रभु के वचन स्वरूप आगम आज भी त्रैकालिक सत्य प्रस्तुत करते हैं, उनका थोड़ा ही, सही अहसास करवाए और **``अहो जिनशासनम्''** **``Salute Jinshasanam''** बोलने को मजबूर करें, ऐसी घटना लिखे बिना रहा नहीं जाएगा।

जन्मभूमि आदि सभी पंचांग आज जिस Ephemeris data से बनते हैं, उनकी Printed copy गुरुकुलम साबरमती के संचालक **जीतुभाई बालड** द्वारा भेजे गए माननीय **पण्डितवर्य राजेश्वरसिंह राणा जी** के पास से मिली। मेरे लिए ज्योतिष का विषय सर्वथा अपरिचित था, किन्तु पण्डित जी ने उन डेटा के सभी विवरण खोलने की पद्धत्ति दिखाई।

फिर तो परिचित युवकों से अनेक वर्षों के डेटा के प्रिंट मंगवाए। अब आश्चर्य यह है कि ५२४ B.C. के वर्ष के डेटा की जाँच करने पर **दिनांक २२/६/५२४ B.C. के डेटा में से शास्त्रपाठ के अनुसार १) पांचवें आरे की शुरूआत वाला, २) चातुर्मास की ऋतु के प्रारम्भ वाला, ३) श्रा.व. १ की तिथि से शुरु होने वाला, ४) अभिजित के योग में तथा उत्तरायण में प्रवेश करने वाले चन्द्र को सूचित करने वाला, तथा ५) पुष्य के योग में रहा तथा दक्षिणायन में प्रवेश करने वाले सूर्य को सूचित करने वाला- जैसा अवकाश होता है, वैसा डेटा मिला।** कदाचित् आस–पास के ५० वर्षों की जानकारी जाँची, किन्तु कहीं तिथि नहीं बैठी, तो कहीं नक्षत्र नहीं बैठा तो कही अयन नहीं बैठा। प्रभु शासन के शास्त्रपाठ आज भी इस हद तक स्पष्ट मिल सकते हैं, यह जानकर सहज ही मुख से निकल उठा, **``अहो जिनशासनम्''।**

मात्र थोडे ही वर्ष पहले की संस्था और ई.सं. १९७० में तैयार हुए डेटा से २५४४ वर्ष पूर्व शुरू हुए पांचवें आरे के निर्दिष्ट आकाश की ग्रहस्थिति मात्र २-३ घण्टे के बदलाव के साथ सूचित करते है। यह डेटा तैयार हुआ है–DE ४३१ Project से, और ये लोग अपने साहित्य में लिखते हैं कि यह डेटा लम्बे समय

अन्तराल का होने के कारण थोड़ा Less Accurate है, इसलिए २-३ घण्टे का फर्क होना सम्भव है। यह मात्र गणित और टेक्नोलॉजी का संयुक्त प्रयास है जिससे प्राचीन काल के आकाश की स्थिति जानी जा सकती है।

- गेलीलिओ के समकालीन **वैज्ञानिक केप्लर** द्वारा तैयार किए गए ३ नियम आज भी स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं। उसका **दूसरा नियम समान माप की तिथि का समर्थन करता है।**
- नेपाल की दरबार लाइब्रेरी में स्थिति शिलालेख **पोष और आषाढ़ को अधिक मास** के रूप में स्थापित करते हैं।

``इन परम्पराओं का विच्छेद हो गया है'' ऐसी स्वीकृति व्यापक हो गई हो, ऐसे काल में **वैज्ञानिक और इतिहासविद** एक–एक शास्त्रपाठ को सत्य साबित करते हुए नजर आ रहे हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन की स्थिरता, शुद्धि और वृद्धि करने वाले ये प्रमाण देखकर हृदय बोल उठता है, **``नमोऽस्तु कलये यत्र त्वद्दर्शनमजायत।''**

- **मात्र इतना ही कहूँगा कि श्रद्धायुक्त जिज्ञासा और संशोधकवृत्ति जीवन्त हो, तो प्रत्येक आगमवाक्य की सत्यता टेक्नोलॉजी के माध्यम से जगत के समक्ष रखी जा सकती है।**
- नक्षत्र मीमांसा पुस्तक को केंद्र में रखकर यदि सोचे तो, **अभ्यास करते हुए वेदांग ज्योतिष पर आधारित मैसूर से प्रकाशित शामशास्त्री** की टीका से युक्त एक ग्रन्थ मिला। ई.सं.पूर्व ११०० से १५०० में रचित इस ग्रन्थ पर शामशास्त्री की टीका है, उसी टीकाकार के शब्दों में **'सूर्यप्रज्ञप्ति'** के विषय में जो उल्लेख मिला, वह निम्नलिखित है :

'सूर्यज्ञप्तिसुभाषितैस्समुच्चयैरम्लानमाला कृतां।
धृत्वा मूर्ध्नि कृतो मयाऽस्य विवृतौ यत्नस्सतां सम्मुदे ॥१४॥'

अर्थात् सूर्यज्ञप्ति (प्रज्ञप्ति) के सुभाषित रूपी पुष्पों से विकसित माला को मस्तक पर धारण करके सज्जनों के आनन्द हेतु मेरे द्वारा इसकी (वेदांग ज्योतिष की) टीका में यत्न किया गया है ॥१४॥

अन्यदर्शनी की कलम से लिखे ये शब्द **क्या यह सूचित करने हेतु पर्याप्त नहीं हैं, कि सूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैन आगमों का स्थान और मान खगोलशास्त्र (ग्रहादि गणित) एवं ज्योतिष विषय के विद्वानों में कितना था ?**

हृदय को प्रफुल्लित करने वाले इस प्रकार के अनेकानेक सुभाषित मिलने के कारण उत्साह में वृद्धि होता गई, उपरान्त देव और गुरु की असीम कृपा का बल मिलने से सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थ के सहारे नक्षत्र से सम्बन्धित जो ज्ञान खुलता गया वही **'नक्षत्र-मीमांसा'** के द्वारा अस्तित्व में आया ।

ऐसे दूसरे अनुभव होने पर संशोधन में आनन्द और अहोभाव बढ़ता गया और नई–नई स्फुरणाएँ सतत होती गईं, और तैयार होने वाला **नक्षत्र-तिथि विचार विमर्श** का नजराना संघ के चरणों में समर्पित कर रहा हूँ ।

यह मात्र **विचार है, निर्णय नहीं, इसलिए मध्यस्थ बुद्धि से होने वाले अभ्यास और टिप्पणियाँ सहर्ष स्वीकार्य हैं । दोनो पुस्तक की यह एक ही संक्षिप्त आवृत्ति है,** जिसका नाम **नक्षत्र-तिथि विचार-विमर्श** रखा गया है ।

जिसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण में रुचि हो तो कम से कम पेज नं. ५४ से **नक्षत्र व्यवस्था में आधुनिक खगोल की विचारणा** तथा पेज नं. ९२ **''तिथि उत्पत्ति की सत्यता के सन्दर्भ में तुलनात्मक विचारणा''** से तो यह पुस्तक अवश्य पढ़े, ऐसी विनयपूर्ण विनती है ।

दिव्य सांनिध्य द्वारा सतत बल प्रदान करने वाले पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा.** तथा पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में मेरी कोटिशः वन्दना ।

इस ग्रन्थ के सृजन के आज्ञादाता, और अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से इस ग्रन्थ को नवपल्लवित करने वाले स्व. पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयजयघोषसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

जिनकी शीतल छाया उपशम भाव की साधना का मूल है, ऐसे प्रशान्तमूर्ति वर्तमान गच्छाधिपति प.पू. आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

पंचांग निर्माण का स्वप्न सृजित करने वाले और इस हेतु सतत प्रेरणा देने वाले दादा गुरुदेव स्व. पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयहेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

समस्त विषय-वस्तु को जाँचकर अपनी तार्किक प्रज्ञायुक्त कलम से इसका परिमार्जन करने वाले पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयजयसुन्दरसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

प्रवर समिति के अन्तर्गत पंचांग समिति के कार्यवाहक पद का उत्तरदायित्त्व सुचारू रूप से निभाने वाले प.पू.आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयभाग्येशविजयसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

भवोदधितारक गुरु और विद्यागुरु के रूप में उभय उत्तरदायित्त्व वहन करके सतत मार्गदर्शक बनने वाले पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजय संयमबोधिसूरीश्वरजी म.सा.** के चरणों में वन्दना ।

संयम जीवन ग्रहण करने की सहमति देकर सतत निर्मल जीवन जीने और सार्थक शासन सेवा करने की प्रेरणा देने वाली प.पू. बापजी म.सा. के समुदाय की सा. **श्री ज्योतिरत्नाश्रीजी म.सा.** की शिष्या सा. **श्री गुप्तित्रयाश्रीजी** (पू.माँ म.सा.) सा. **श्री नम्राशयाश्रीजी** (पू. बहन म.सा.) के चरणों में वन्दन ।

मेरे संयम जीवन में सतत सहकार, सौहार्द और स्नेह की पूर्ति करने वाले बड़े बन्धु **पू. मुनिराजश्री जिनबोधि म.सा.**, लघु बन्धु **पू. मुनिराजश्री तारक, परार्थ, धन्य, शासन, वज्र तथा कुंथुबोधि म.सा.** और शिष्य **मुनिश्री वर्धमानबोधिविजयजी म.सा.** का भी कृतज्ञभाव से स्मरण ।

• २०१९ में भारत सरकार द्वारा संस्कृत एवं ज्योतिष विषय में **राष्ट्रपति अवॉर्ड से सम्मानित पण्डितवर्य श्री सत्यदेव शर्मा** ने जैन ग्रन्थों (सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति) और जैनाचार्यों द्वारा कृत खगोल एवं ज्योतिष के विषय के विवेचन की प्रशंसा करते हुए अपने सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि आदि ग्रन्थ पढ़ने का सुझाव दिया, जिनसे प्राचीन एवं आधुनिक काल की परम्परा का समन्वय करने की कुंजी मिली, अतः पण्डितजी का खूब-खूब धन्यवाद ।

इस ग्रन्थ में उपलब्ध सामग्रियों और साक्षीपाठ द्वारा चिन्तनात्मक लेख लिखा गया है, **जो अन्तिम निष्कर्ष नहीं, बल्कि ठोस विचारणा है ।** अतः सभी अधिकृत निष्पक्ष गीतार्थ इस लेख को पढ़ें, विचारें और अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा के द्वारा अधिक सत्य-शास्त्र सापेक्ष बनाते हुए मुझे एवं श्रीसंघ को मार्गदर्शन दें, ऐसी करबद्ध प्रार्थना है ।

–मुनि कृपाबोधिविजय

दीवाली बाग, भा.व. ०))

(श्री नेमिनाथ केवलज्ञान कल्याणक)

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पेज
१.	सम्मति पत्र	१
२.	ज्योतिषचक्र की व्यक्ति–समुदाय पर होने वाली असर का रहस्य	४
३.	नक्षत्रों या तिथि से सम्बन्धित जैन पंचांग का विच्छेद मानें या नहीं ?	८
	नक्षत्र मीमांसा	
४.	जैनेतर ज्योतिष / खगोल ग्रन्थों में नक्षत्रों का महत्त्व	१३
५.	जैन आगमों में प्राप्त नक्षत्र-सम्बन्धित हकीकतें	२१
६.	यूरोपीय खगोल के मतानुसार नक्षत्रों/राशियों की व्यवस्था	५०
७.	सर्वज्ञमत की आधुनिक खगोल के साथ भेदाभेद की विचारणा	५४
८.	शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार और प्रत्यक्ष के साथ मेल साधने से पंचांग बनता है ?	५९
९.	(१) नक्षत्रों की संख्या २८ है या २७-एक मीमांसा	६४
१०.	(२) नक्षत्रोंका विस्तार समान या असमान ?	६६
११.	नक्षत्रका चन्द्र के योग के साथ संस्कार	७४
१२.	(३) सायन-निरयन बिन्दु की सत्यता	७५
	तिथि मीमांसा	
१३.	ज्योतिष-खगोलीय ग्रन्थों में तिथि की मान्यता	८७
१४.	तिथि–उत्पत्ति की सत्यता के विषय में तुलनात्मक विचारणा	९२
१५.	समाधान-१ दोनों के बीच समन्वय	१०६
१६.	समाधान-२ क्या 'क्षये पूर्वा, वृद्धौ तथा उत्तरा' का अर्थ ऐसा कर सकते हैं ?	१२२
१७.	समाधान-३ सूर्यप्रज्ञप्ति और ठाणांग सूत्र की अन्य एक तिथि गणना पद्धति और वैदिक काल के साथ इसका समन्वय	१२८
१८.	अधिक मास की निष्पत्ति	१४४
१९.	नूतन पंचांग निर्माण प्रक्रिया	१५१
२०.	परिशिष्ट-१	१६०

॥ ॐ दुर्गायै नमः ॥

फोन : ~~332112~~

श्री नवदुर्गा ज्योतिष निकुलिनिका निकायः

ई-116, मुरलीपुरा स्कीम, सीकर रोड, जयपुर-302 039 (राज.)

संचालक :
पं. सत्यदेव शर्मा
एम.एस.सी. (गणित-सिद्धान्त ज्योतिष के साथ)
सी. ए. आई. आई. बी.

दिनाङ्क : 14 मार्च 2020

सम्मति पत्र

परमपूज्य मुनिश्री श्री 1008 कृपाबोधिविजय जी महाराज द्वारा संकलित एवं लिखित 'नक्षत्र मीमांसा' नामक लघु ग्रंथ का मैंने आद्योपांत अवलोकन किया। इसमें आचार्यश्री ने जैन, हिन्दु तथा आधुनिक ज्योतिष विधाओं का सम्यक अध्ययन करके इन तीनों विधाओं में नक्षत्रों की अवधारणा के संबंध में आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों की समरूपता एवं भिन्नताओं को परिलक्ष करने का सुन्दर प्रयास किया है। आपने ग्रंथ में आदिकालिक नक्षत्र अवधारणा तथा उसके आदिस्वरूप को महत्व देते हुए, उनके संबंध में प्राप्त विषय सामग्री को, जो इन तीनों विधाओं में प्राप्त होती है, विस्तार से कहने का सराहनीय प्रयास किया है।

ग्रंथके आरम्भ में जैन ग्रंथों के आधार पर ठोस विचार मुनिश्री ने प्रस्तुत किये हैं, जिनके अन्तर्गत ज्योतिष का व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभाव के रहस्य, जैन पञ्चाङ्गों में नक्षत्र विषय संबंधी विच्छेद की मान्यता, पूर्वाचार्यों की विद्वता पर शंका अथवा श्रद्धा जैसे बिन्दुओं के अन्तर्गत विषय को विस्तार दिया है। जैन साहित्य में ज्योतिष संबंधी ग्रंथों के उल्लेख के साथ ज्योतिष-चक्र में अढ़ाई द्वीप, दो सूर्य, दो चन्द्रमा, जम्बू द्वीप, नक्षत्रों के मान तथा स्थान, ग्रहादि की महत्वता इत्यादि पर भी सम्यक प्रकाश डाला गया है। नक्षत्र समूहों से समान-मान की राशियों की मान्यता, नक्षत्रों के नाम-स्थान-आकार तथा उनके चार-क्षेत्रों

पृष्ठ-2 पं. सत्यदेव शर्मा

॥ ॐ दुर्गायै नमः ॥

14 मार्च 2020

(२)

पर भी यथोचित आगम जैन शास्त्रों के आधार पर प्रकाश डाला गया है।

चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के (1) उत्तराभिमुख (२) दक्षिणाभिमुख तथा (3) प्रमर्द, तीन प्रकार के योग; सूर्य के साथ नक्षत्र तथा राशियों के योग; युगारम्भ पर आकाश में सूर्य-चन्द्रमा-पुष्य तथा अभिजित नक्षत्रों की स्थिति आदि पर जैन आगम शास्त्रानुसार सुन्दर प्रकाश भी ड़ाला गया है; जो बहुत ही सराहनीय तथा प्रभावशाली है।

ग्रंथ में आगे यूरोपीय मत से भगोल में नक्षत्रों तथा राशियों की व्यवस्था एवं कोपरनिकस की सूर्यकेन्द्रिक अवधारणा पर सरल तथा स्पष्ट वर्णन किया गया है।

जिनमत तथा आधुनिक मतानुसार नक्षत्रों की माप, नक्षत्रों से चन्द्रमा का योगकाल, नाक्षत्रमास, सायनवर्ष, सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायण मार्ग की दिवसादि में माप, निरयनवर्ष आदि पर भी सूक्ष्मता से तर्क-वितर्क द्वारा दोनों विधाओं में समानता-असमानता का प्रतिपादन मार्मिक रूप में मुनिश्री ने विज्ञता पूर्वक किया है।

मुनिश्री ने हिन्दु (भारतीय) ज्योतिष परम्परा में पूर्वाचार्यों तथा उन के ग्रन्थों का वर्णन करके उनमें कथित उपरोक्त विषयों के संबंधित उद्धरण दिये हैं, जो श्रेष्ठ है।

ग्रन्थ में 'सायन-निरयन बिन्दु की सत्यता' विषय पर तीनों विधाओं के सिद्धान्तों के मानों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसको जानना बहुत ही लाभदायक है तथा इसका ज्ञान शोध-छात्रों एवं विषय के आचार्यों के लिए अति महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

मुनिश्री का 'नक्षत्रमीमांसा' ग्रंथ में विस्तार से जैन ज्योतिषमत के आगम सिद्धान्तों का आधुनिक तथा भारतीय (हिन्दु) ज्योतिष सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके

पृष्ठ-3

पं. सत्यदेव शर्मा

।। ॐ दुर्गायै नमः ।। 14 मार्च 2020

(3)

का अभिप्राय यह परिलक्षित होता (दिखाई देता) है कि जिन-ज्योतिषमत का सम्यक् अध्ययन किया जाय तथा इसके सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा गणनाओं की सूक्ष्मता एवं प्राप्त मानों के महत्व को गहराई से समझा जाना चाहिए तथा उनको महत्व दिया जाना चाहिए।

मैं मुनिश्री के द्वारा संकलित तथा रचित 'नक्षत्रमीमांसा' नामक लघु ग्रंथ की विषय सामग्री तथा उसके प्रस्तुतिकरण से बहुत प्रसन्नता अनुभव करता हूँ एवं पूज्य मुनिश्री से नम्र निवेदन करता हूँ कि वे अपनी यशस्वी लेखनी को इसी प्रकार गति देते रहें तथा जिन-आगमशास्त्रों के गूढ़ रहस्यमय ज्ञान को सर्वसुलभ कराने का श्रेष्ठ कार्य करते रहें, जिससे सभी इसके महत्व को समझ सकें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

पं. सत्यदेव शर्मा
14-03-2020
ई-116 मुरलीपुरा स्कीम
जयपुर-302039
राजस्थान

ज्योतिषचक्र की व्यक्ति–समुदाय पर होने वाली असर का रहस्य

विश्व के सभी पदार्थ भले वह जीव हो या जड़, सब पर द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की एक निश्चत असर होती दिखाई देती है। कैमेस्ट्री के अनुसार O_2 = ऑक्सीजन (प्राणवायु), O_3 = ओजोन (जहरीली वायु) होती है। मतलब यह कि विज्ञान के अनुसार मात्र 'एक' व्यावहारिक परमाणु द्रव्य की इतनी ताकत है, कि वह प्राणवायु को प्राणघातक वायु में रूपान्तरित कर देता है। सर्वज्ञ भगवन्त तो कहते ही हैं, कि प्रत्येक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपनी विशेष असर होती है, जो कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक होती है। ये असर समष्टिगत या व्यक्तिगत, दोनों प्रकार की होती है। इस प्रकरण में काल द्रव्य का विशिष्ट चिन्तन किया गया है ।

वर्तमान में भरत क्षेत्र में हुण्डाअवसर्पिणी काल चल रहा है, इसलिए काल का अधिकतम नकारात्मक असर समष्टिगत रूप से हो रहा है। यहाँ प्रश्न उद्भव होता है, कि जीव और जड़ सृष्टि पर एक साथ ऐसी नकारात्मक असर डालने वाला तत्त्व आखिर क्या है? उसका स्वरूप कैसा है ?

वास्तवमें काल के प्रवाहमें हर वस्तु या पदार्थ के अलग–अलग स्वरूप, पर्याय या अवस्थाओं का सृजन, विसर्जन या रूपान्तरण होता रहता है। छः द्रव्यों में जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का समावेश होता है, और इसे (काल को) अजीव के उत्तरभेद के रूप में शामिल किया गया है ।

प्रस्तुत निबन्ध में काल के परिवर्तन का स्वरूप और दर्शन की पहचान ज्योतिष के विविध भेद, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारों के विमान – जो भिन्न–भिन्न रत्नों से बने हैं, उन विमानों की गति, उनके परस्पर योग आदि को अयन और मण्डलों द्वारा दिखाने का प्रयत्न किया गया है। [१]इन

१. रयणियर–दिणयराणं नक्खत्ताणं च महागहाणं च ।
चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही मणुस्साणं ।। (देविंदत्थओ पयन्ना–गा.१३९)

रत्नों के प्रकाश की विशिष्ट असर मध्यलोक के सभी पदार्थों पर होती है। यहाँ विशेष रूप से यह बात उल्लेखनीय है, कि काल तत्त्व और ज्योतिष-चक्र के विमानों की सतह के रत्नों के प्रकाश की ऊर्जा ढाई द्वीप (मनुष्य लोक) में भी एक असर पैदा करती है ।

ढाई द्वीप के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न काल के अनुसार यह असर अच्छा या खराब हो सकता है। ढाई द्वीप के बाहर स्थित असंख्य द्वीप और समुद्रों के आकाश में स्थित ज्योतिष विमान स्थिर या अचल होने के कारण वहाँ इस प्रकार का परिवर्तनशील असर देखने को नहीं मिलता। इसलिए ढाई द्वीप से जुड़े काल के अशुभ असर से बचने या शुभ असर का अधिक लाभ पाने के लिए ज्योतिष चक्र के परिवर्तित होने वाले शुभ-अशुभ मुहूर्त और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि के सामंजस्य से बनने वाले शुभ-अशुभ योगों का शास्त्रों में सूक्ष्मता और विस्तार से विवेचन किया गया है।

ढाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र आदि के स्थान सतत बदलते रहते हैं। तारों, ग्रहों और नक्षत्रों के भी परस्पर योग होने के उपरान्त भी (१) कल्पवृक्ष वाले युगलिक क्षेत्र में इस ऊर्जा का असर नहीं होता, (२) महाविदेह में अल्प असर होता है, और (३) भरत ऐरवत क्षेत्र में अधिकतम प्रभाव होता है, इसलिए विशेष परिवर्तन यहीं होता है।

जिस प्रकार क्रोध या क्षमा आदि भावों में प्रशस्त-अप्रशस्त भेद होते हैं, उसी प्रकार अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी काल के भी प्रशस्त-अप्रशस्त भेद होते हैं। अवसर्पिणी काल क्रमशः अधोगति या पतन की ओर ले जाने वाला काल होने पर भी ज्योतिषचक्रके परिवर्तित होने वाले योगों के साथ शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की असर होती रहती है। इसलिए शुभ योग में कार्य करने से इष्ट फल की सिद्धि भी प्राप्त हो सकती है। यह व्यवहारिक लाभ लेने के लिए ही ज्योतिषशास्त्र का उपयोग किया जाता है। अपेक्षा से ज्योतिष (भविष्यवाणी) की तुलना में ग्रहगति के गणित का ज्ञान होना अधिक आवश्यक है, क्योंकि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि की चाल, गति, मण्डल

आदि की जानकारी के अभाव में उसके योग एवं उसका फलकथन (ज्योतिष) कैसे सम्भव हो सकता है? अतः ग्रहगति के गाणितीय विज्ञान के द्वारा सूर्य, चन्द्र आदि की गति, ग्रहण और योग की जानकारी मिलती है और ज्योतिषशास्त्र के द्वारा इनके सकारात्मक या नकारात्मक असर की जानकारी भी मिलती है। किन्तु दुःख इस बात का है, कि वर्तमान जिनशासन में ज्योतिष के अभ्यास का अच्छा खासा विस्तार होने के बावजूद ज्योतिष के आधारभूत ठाणांग, भगवतीजी, जीवाजीवाभिगम, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति जैसे अंग–उपांग सूत्रों में त्रैकालिक सत्यभूत ग्रहगति के गणित का जो उल्लेख मिलता है, उसका अभ्यास प्रायः उपेक्षित रहा है, और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किए गए संशोधनों को त्रैकालिक सत्यवत् स्वीकार करके उनसे ही पंचांग और ज्योतिष चक्र की जानकारी ली जा रही है। यह उचित है या अनुचित, यह तो विशिष्ट ज्ञानी ही बता सकते हैं।

वैसे, खगोल विज्ञान का अभ्यास मुहूर्तशुद्धि के लिए अतिआवश्यक है। क्योंकि मुहूर्तशुद्धि से इष्टभावों की प्राप्ति और उस निमित्त से अशुभ कर्म का उपशम और शुभ कर्मों का उदय होता है। इसलिए जैन संघ में इस विषय पर अभ्यास बढे, इसकी अधिक आवश्यकता मेहसूस होती है।

ग्रहगति के गणित का ज्ञान → मुहूर्तशुद्धि → शुभ भावों का प्रकटीकरण → शुभ कर्मों का उदय

हम फिर से यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि यह लेख अन्तिम निष्कर्ष नहीं, बल्कि निष्कर्ष में सहायक बने इस उद्देश्य से उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

ज्ञान त्रैकालिक सत्य है, जिसका विच्छेद सम्भव नहीं है, इसीलिए द्वादशांगी को भी अर्थ से शाश्वत माना गया है। जैसे १८ लिपियों का ज्ञान भी शाश्वत है, हो सकता है कि उन लिपियों को पहचानने वाले विद्वानों का विच्छेद हो गया हो। वैसे ही **पंचांग से सम्बन्धित ज्ञान भी विच्छेद नहीं होगा, किन्तु उसे जानने वाले विद्वानों का विच्छेद होना सम्भव है (जैसे ब्राह्मी लिपि) किन्तु यदि ज्ञान उपलब्ध है, तो (१) आत्मशुद्धि से, (२) दैवी सहायता से या (३) वर्तमान के आविष्कारक उपकरणों के द्वारा ग्रहगति से सम्बन्धित किए**

गए निरीक्षण और माप के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों के प्रामाणिक उपयोग से क्या वह परम्परा पुनर्जीवित नहीं हो सकती ? ब्राह्मी लिपि को पुनर्जीवित करने जैसी विविध घटनाएँ वर्तमान में और भी बनी है, बन रही है जिसमें लुप्त हो चुकी परम्परा को पुरुषार्थ एवं संशोधन के द्वारा पुनर्जीवित किया गया। उसी प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी आत्मशुद्धि या दैवी सहायता से ग्रन्थों का मिलान या जीर्णोद्धार किया गया हो, ऐसे दृष्टान्त भी देखने को मिलते हैं।

संयमी का मार्गस्थ पुरुषार्थ और वर्तमान के आविष्कारक उपकरणों के द्वारा ग्रहगति से सम्बन्धित किए गए निरिक्षण और माप के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों का गृहस्थ द्वारा किया जाने वाला प्रामाणिक उपयोग क्या इस परम्परा को पुनर्जीवित नहीं कर सकते? तो फिर इस ज्ञान का विच्छेद कैसे मान सकते हैं? क्या 'जैन पंचांग का विच्छेद हो गया' ऐसा कहना शत प्रतिशत सत्य है? यदि ऐसा है, तो सूर्यप्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों के आधार पर $\frac{61}{62}$ अंशात्मक तिथि का ज्ञान, जो आज सम्भव है, वह भी सम्भव नहीं रहा होता ।

नक्षत्रों या तिथि से सम्बन्धित जैन पंचांग का विच्छेद मानें या नहीं ?

नक्षत्रों या तिथि से सम्बन्धित जैन पंचांग (टिप्पणक) का विच्छेद हुआ है या नहीं, इस विषय में चर्चा करने से पूर्व इतिहास की ओर थोड़ा दृष्टिपात करने की आवश्यकता है।

(१) दीपावली (आ. व. ०))), शास्त्रीय (का. व. ०))) के दिन स्वाति नक्षत्र में प्रभु वीर का निर्वाण हुआ।

(२) प्रभु के निर्वाण से 3 वर्ष 8½ महीने, अर्थात् वीर सम्वत् ४ (चौथे) वर्ष से पांचवें आरे की शुरूआत हुई।

(३) अत्यन्त गहन और गम्भीर पदार्थों से युक्त कालिकसूत्र **सूर्यप्रज्ञप्ति** की रचना भी प्रायः इसी समय की है।

(४) वीर सम्वत् १७० के आस–पास चौउदहपूर्वधर **श्री भद्रबाहुस्वामी** द्वारा सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र पर निर्युक्ति की रचना हुई, अर्थात् उपांग होते हुए भी वीर सम्वत् १७० से पहले सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र की रचना हो चुकी थी। उपरान्त कालिकसूत्र में उसका समावेश है, जो यह दर्शाता है कि यह अति–गम्भीर और रहस्यपूर्ण सूत्र है।

नक्षत्र संबंधित विचारणा

(५) **सूर्यप्रज्ञप्ति** मूल सूत्र में सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रों से सम्बन्धित सिद्धान्तों की समझ दी गई है, और इस मूल सूत्र में नक्षत्रों के जो स्थान, मण्डल आदि बताए हैं, वे वर्तमान में भी आकाश की स्थिति के साथ मेल खाते हैं। यद्यपि आज के पंचांग, जो ग्रीक परम्परा से प्रभावित हैं, उनमें यह जानकारी नहीं मिलती। अर्थात् आकाश अलग है, और आधुनिक पंचांग अलग बात बोलते हैं।

(६) उपरान्त **ठाणांग मूल सूत्र** में भी नक्षत्रों की जानकारी मिलती है। विक्रम की चौथी सदी में **श्री पादलिप्तसूरिजी** द्वारा रचित ज्योतिष करण्डक में भी यही जानकारी मिलती है।

(७) वीर सं. ९८० में हुई वल्लभीपुर वाचना में मौखिक ज्ञान को पुस्तकारूढ़ किया गया। उस समय लिखित आगमों में भी नक्षत्र से सम्बन्धित पाया जाने वाला सारा ज्ञान आज की वर्तमान मान्यताओं से, अर्थात् लौकिक ज्ञान से भिन्न है।

(८) तत्पश्चात् विक्रम सम्वत् १४८६ में रचित **पर्युषण स्थितिविचार** में तिथि से सम्बन्धित जानकारियों को केन्द्र में रखते हुए जैन टिप्पणक का विच्छेद बताया गया है, किन्तु कहीं भी नक्षत्रादि का उल्लेख नहीं है। उपरान्त सर्वप्रथम एक ही व्यक्ति रूपी मुनि द्वारा दर्शित 'जैन पंचांग के विच्छेद' के आधार पर तटस्थ बुद्धि से [१]कष–छेद–ताप कसौटी द्वारा विचार करने का क्या जैन संघ को अधिकार नहीं होता ?

(९) अन्य दर्शन (वैदिक) परम्परा की ओर देखें, तो प्रायः विक्रम की सातवीं शताब्दी में **ब्रह्मगुप्त आचार्य,** आठवीं शताब्दी में **वटेश्वराचार्य** और बारहवीं शताब्दी में हुए लीलावती गणित के रचनाकार भास्कराचार्य (द्वितीय) द्वारा रचित **सिद्धान्तशिरोमणि** आदि ग्रन्थों में जैनागमों में प्राप्त नक्षत्र की व्यवस्था को ही मुहूर्तशुद्धि के लिए मान्यता दी है, इसकी जानकारी पीछे दी गई है।

(१०) विक्रम की ११वीं सदी में **वादिवेताल शान्तिसूरिजी** के विद्याशिष्य वडगच्छीय **आ. यशोभद्रसूरिजी** की पाट में हुए **पू. आ. मुनिचन्द्रसूरिजी** द्वारा कृत **'सूर्यचन्द्र मण्डल विचार'** और **'कालविचारसयं'** नामक ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

(११) इसके अलावा वि. सं. १६५२ में **विनयकुशलगणि** द्वारा पूर्वाचार्य **मुनिचन्द्रसूरि कृत मण्डलकुलक** और **जीवाभिगम सूत्र** के आधार पर **मण्डल प्रकरणम्** ग्रन्थ की रचना हुई। उस समय भी नक्षत्र से सम्बन्धित वे सभी जानकारियाँ मिलती हैं, जिसका रोचक वर्णन **'पदार्थ प्रकाश' भाग – २५** में दिया गया है।

(१२) तत्पश्चात् **पू. उपाध्याय विनयविजयजी** द्वारा रचित **लोकप्रकाश** ग्रन्थ में नक्षत्र के सम्बन्ध में भी यही जानकारी मिलती है।

---

१. आप्तशास्तृकैः पुनराप्तवचनमेवमनूद्यते 'निकषच्छेदतापेभ्यः सुवर्णमिव पंडितैः,' परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्धचो न तु गौरवात् । ૧૯મું અષ્ટક ૫મી ગાથાની ટીકા

क्या उपरोक्त जानकारी यह बताने के लिए पर्याप्त नहीं है कि नक्षत्र से सम्बन्धित गणित जानने के लिए आज भी जैनग्रन्थों में स्पष्टता है?

क्या सूर्यप्रज्ञप्ति आदि लोकोत्तर ग्रन्थ और सिद्धान्त शिरोमणि आदि लौकिक ग्रन्थ नक्षत्र परम्परा का जो ज्ञान देते हैं, उसे देखते हुए भी इस ज्ञान परम्परा का विच्छेद मानना उचित है ?

तिथि संबंधित विचारणा

(१) सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति के मूल सूत्र में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों से सम्बन्धित सिद्धान्तों की समझ दी गई है, और साथ ही साथ उनके मूल सूत्र में अतिरात्रि, अवमरात्रि, चन्द्रदिन, चन्द्रमास, चन्द्र संवत्सर, अधिक मास, अधिक वर्ष आदि की जानकारी मिलती है ।

(२) इसके उपरान्त अन्य दर्शन के **लगधमुनि** कृत **वेदांग ज्योतिष** के ग्रन्थ में (जो अति प्राचीन माना जाता है), जिसमें यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि के पाठों का उपयोग हुआ है, उसमें प्राप्त अधिकतर तिथि की जानकारी या अधिक मास की जानकारी भी **सूर्यप्रज्ञप्ति** और **चन्द्रप्रज्ञप्ति** ग्रन्थ की मान्यता को पुष्ट करती है, जो इस प्रकार है :—

उदाहरण १ : सूर्य वर्ष का प्रमाण — दिवस, ऋतु, अयन और युगका माप यजुर्वेदपाठीका वेदांगज्योतिषः गाथा १८

त्रिंशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दःषट् चर्तवोऽयने ।
मासा द्वादश सूर्याः स्युरेतत् पंचगुणं युगम् ॥

३६६ दिन, ६ ऋतुएँ, २ अयन, १२ माह का सूर्य संवत्सर होता है, उसका पांच गुना (५ सूर्य वर्ष) का एक युग होता है ।

सूर्यप्रज्ञप्ति—चन्द्रप्रज्ञप्ति सू. ५७ की टीका में (१० वां प्राभृत, २० वां प्राभृत प्राभृत)

• **''छप्पि उऊपरियट्टा एसो संवच्छरो उ आइच्चो''** (ज्योतिषकरण्डक प्रकीर्णम्—४१) = ६ ऋतुओ का परावर्तन सूर्य संवत्सर होता है ।

• **तिन्न अहोरत्तसया छावट्ठा भक्खरो हवइ वासो** = सूर्य संवत्सर मे ३६६ अहोरात्रि होती हैं ।

• **युगं-पञ्च संवत्सरात्मकं मासानधिकृत्य प्रमीयते, तत्र युगं-प्रागुदित स्वरुपं यदि सूर्यमासैर्विभज्यते ततः षष्टिः सूर्यमासा युगं भवन्ति** = ५ वर्ष आत्मक युग मास की अपेक्षा से मापा जाता है । उपरोक्त स्वरूप

वाले युग को सूर्य मास से विभाजित करें तो (१२ मास x ५ वर्ष) = ६० सूर्य मास = १ युग होता है ।

उदाहरण २ : सूर्य, चन्द्र और सावन (ऋतु) का प्रमाण – वेदांग ज्योतिष, गा-३१ ।

सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकाद्विसप्तिका ।
द्युत्रिंशत् सावनः सार्द्धः सूर्यः स्तृणां स पर्ययः ।।

टीकार्थ : स्तृ=नक्षत्र । **स्तृणां** नक्षत्राणां च परावृत्तिरेव स्वकं दिनमित्युक्तं भवति । टीकार्थ–३१ गाथा ।

(युग में) सावन मास ६१, चन्द्र मास ६२, नक्षत्र मास ६७ होते हैं, सावन मास ३० दिन का, सूर्य मास $३०\frac{१}{२}$ दिन का, नक्षत्रमास $२७\frac{२१}{६७}$ दिन का है ।

सूर्यप्रज्ञप्ति सू ५७ की टीका	चन्द्रप्रज्ञप्ति १० वें प्राभृत का २० प्राभृत–प्राभृत
•युगमध्ये सूर्यमासाः षष्टिरिति स्थितं	•षष्टिः सूर्यमासा युगे भवन्ति ।
•सावनस्य तु मासा एकषष्टिः ।	•युगं यदि कर्ममासैर्विभज्यते ततः एकषष्टिकर्ममासा भवन्ति ।
•चन्द्रमासा द्विषष्टिरिति ।	•यदि चंद्रमासैस्तदैव युगं विभज्यते तदा द्वाषष्टिचंद्रमासा भवन्ति ।
•नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिः ।	•युगे सप्तषष्टिनक्षत्रमासा भवन्ति ।

इसके उपरान्त अलग–अलग सूत्र में, टीका में उन महीनों का माप दिन के प्रमाण में ऊपर बताए अनुसार दिखाया गया है ।

उदाहरण ३ : अधिक मास की निष्पत्ति

द्वयूनं द्विषष्टिभागेन हेयं सौर्याच् च पर्वणः ।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ ।।३७।। यजुर्वेदीय वेदांग ज्योतिष

सूर्य दिवस से पार्वण (चंद्र) दिन बासठ भाग में से (दो) भाग न्यून होता है, इसलिए पांच वर्ष के युग के मध्य और अन्त में अधिक मास उत्पन्न होता है ।

अब सामने **सूर्यप्रज्ञप्ति सू. ५६ की** टीका और **ज्योतिष करण्डक प्राभृत ३ में** अधिक मास की निष्पति के सन्दर्भ में ऐसा ही कुछ लिखा है :–

चंदस्स जो विसेसो आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स ।
तीसइगुणिओ संतो हवइ हु अहिमासगो एक्को ।।

सूर्य मास और चन्द्र मास के फर्क को ३० से गुणा करें तो एक अधिक मास होता है ।

सट्ठीए अइयाए हवइ हु अहिमासगो जुगद्धंमि ।
बावीसे पव्वसए हवइ य बीओ जुगद्धंमि ।।

चन्द्र के ६० पर्व / पक्ष व्यतीत हो, तब युगार्ध में एक अधिक मास आता है, और कुल १२२ पर्व / पक्ष (६० पर्व + १ अधिक मास + ६० पर्व) व्यतीत होने पर दूसरे युगार्ध में दूसरा अधिक मास आता है ।

इस प्रकार सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष करण्डक आदि ग्रन्थों के साथ वेदांग ज्योतिष की काफी साम्यता है ।

(३) वी.सं. ९८० में हुई वल्लभीपुर की वाचना में मौखिक ज्ञान पुस्तकारूढ़ हुआ । उस समय लिखे गए आगमों में भी तिथि से सम्बन्धित प्राप्त सारा ज्ञान वर्तमान की प्रचलित मान्यताओं से, अर्थात् आज के लौकिक ज्ञान से भिन्न प्राप्त होता है ।

(४) त्यारबाद **वी.सं. १४८६** में **श्री हर्षभूषणगणि** द्वारा रचित **'पर्युषण स्थितिविचार'** में तिथि से सम्बन्धित जानकारी को केन्द्र में रखते हुए जैन टिप्पणक का विच्छेद बताया है । ना कोई गच्छाधिपति, ना कोई आचार्य, ना कोई आचार्य मण्डल और ना ही गीतार्थ–सम्मेलन द्वारा, किन्तु सर्वप्रथम एक व्यक्तिरूप मुनिप्रवर द्वारा दिखाए गए ``जैन पंचांग का विच्छेद' के विचार पर तटस्थ बुद्धि से कष, छेद और ताप की कसौटी द्वारा **विचार** करने का क्या जैन संघ को अधिकार नहीं है ?

(५) तत्पश्चात् पू. उपाध्याय विनयविजयजी द्वारा रचित लोकप्रकाश ग्रन्थ में तिथि के सन्दर्भ में पूर्वोक्त प्राचीनकाल की ही जानकारी मिलती है ।

क्या उपरोक्त जानकारी तिथि से सम्बन्धित गणित जानने के लिए आज भी जैन ग्रन्थों में स्पष्टता है, यह बताने हेतु पर्याप्त मानी जाएगी या नहीं ?

क्या सूर्यप्रज्ञप्ति आदि लोकोत्तर ग्रन्थ और वेदांग ज्योतिष आदि लौकिक ग्रन्थ तिथि परम्परा का जो ज्ञान देते हैं, उसे देखते हुए उस ज्ञान–परम्परा का विच्छेद मानना उचित है या नहीं ?

तो चलिए जानते है एसी नक्षत्र तथा तिथि विषयक रसप्रद जानकारी को जैन शास्त्र, वेदांग शास्त्र ओर विज्ञान सभी का समन्वय करती है ।

नक्षत्र मीमांसा

जैन ग्रन्थों के आधार पर नक्षत्रों से सम्बन्धित ठोस चर्चा विचारणा

जैनेतर ज्योतिष / खगोल ग्रन्थों में नक्षत्रों का महत्त्व

• अन्य (लौकिक) साहित्य की दृष्टि में :

ह्व सनातन परम्परा के अति–प्राचीन ग्रन्थों, **ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद** आदि मूल वेदों में ज्योतिष–विषयक जानकारी देने वाली सूक्तियों में नक्षत्र का उल्लेख मिलता है।

– तत्पश्चात् रचित **सूर्यसिद्धान्त, रोमकसिद्धान्त, पोलिशसिद्धान्त, पैतामहसिद्धान्त** आदि सभी में नक्षत्रों का उल्लेख है।

– **लगधमुनि** कृत **'वेदांगज्योतिष'** नामक अति–प्राचीन और विश्वसनीय ग्रन्थ में भी नक्षत्र का उल्लेख मिलता है।

– चीन और तिब्बत के प्रदेशों में भी नक्षत्र–गणित स्वीकार किया गया था, वे नक्षत्र को **'सिऊ (Sicou)'** कहते थे और उनकी **संख्या २८ गिनते** थे।

– अरब देशों के साहित्य में नक्षत्र का उल्लेख **'मनाज़िल'** नाम से होता था, और **उनकी संख्या २८ थी ।**

– इसके साथ 'विकिपीडिया' से मिली जानकारी के अनुसार चीन में २८ नक्षत्रों का उल्लेख [7 x 4 = 28] **इस प्रकार ७–७ के ४ विभाग में किया गया है, उपरान्त उनके माप भी सम, सार्ध और अर्धक्षेत्री से प्रायः मिलते–जुलते हैं।**

इस प्रकार अन्य दर्शन परम्परा में कहीं भी राशियों का उल्लेख प्रायः नहीं था, किन्तु नक्षत्रों का ही उल्लेख सर्वत्र मिलता था ।

जैन साहित्य की दृष्टि में

सूर्य–चन्द्रप्रज्ञप्ति, ठाणांग आदि मूल आगमों में **ज्योतिषकरण्डक,**

मण्डलप्रकरण, लोकप्रकाशादि विशिष्ट ग्रन्थों में हर स्थान पर नक्षत्र का ही उल्लेख मिलता है, कहीं भी स्पष्ट रूप से राशि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

* 'गुजराती विश्वकोश' नामक पुस्तक में लिखा है, 'भारतीय ज्योतिष में राशि पद्धत्ति लगभग १५०० वर्ष पूर्व **'सिद्धान्त ज्योतिष'** के प्रारम्भ के समय अपनाई गई हो ऐसा दिखाया है। इससे पूर्व के भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों का ही उल्लेख मिलता है, राशि का नहीं। अतः राशिचक्र की पद्धत्ति प्रायः ई. स. ४५० में ग्रीक प्रभाव में **वराहमिहिर** द्वारा अपनाई होगी ऐसा पता चलता है।'

इस बात से यह तो निश्चित है, कि प्राचीन भारतवर्ष की अन्य परम्परा में भी कहीं भी प्रायः राशि–गणित का उल्लेख था ही नहीं। और वीर सम्वत् ९५० से १००० के आस–पास भारतीय संस्कृति में राशि का Concept प्रचलित हुआ, फिर भी उस समय बने ग्रन्थों में और टीकाओं में भी नक्षत्र गणित का ही उल्लेख है, राशि का नहीं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि, नक्षत्र का इतना महत्त्व क्यों है? क्या सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के महत्त्व से अधिक नक्षत्रों का महत्त्व है ? **उत्तर यह है कि सूर्य, चन्द्र और ग्रहों की अपनी महत्ता अवश्य है, किन्तु नक्षत्रों की संख्या ग्रहों से अल्प होने, और अन्य की अपेक्षा इनकी शीघ्र गति होने के कारण खगोलीय घटनाओं में नक्षत्रों का योगदान अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसलिए नक्षत्र के ज्ञान के बिना ज्योतिष शास्त्र अधूरा है।**

जिस प्रकार भारत देश के समस्त २८ राज्यों का अपना–अपना महत्त्व है, और इन सबके संगठन से ही भारत देश सम्पूर्ण बनता है। किन्तु राजनीति की दृष्टि से मुम्बई, उत्तरप्रदेश और दिल्ली का अधिक महत्त्व है। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे और नक्षत्र – इन पांचों के संयोग से ही ज्योतिषचक्र सम्पूर्ण बनता है, किन्तु फिर भी नक्षत्रज्ञान के बिना ग्रहाचार की घटनाओं को समझना असम्भव है। क्योंकि जैसा पहले देखा उसके अनुसार जैन शास्त्रों की दृष्टि में ये सब ज्योतिष देवों के विमान हैं। ये भिन्न–भिन्न रत्नों से बने हैं और सबके परस्पर योग से भिन्न–भिन्न प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसकी असर समग्र सृष्टि पर पड़ती है।

अब नक्षत्र का महत्त्व इस परिप्रेक्ष्य से समझते हैं। ढाई द्वीप में स्थित चर ज्योतिष चक्र में इन्द्र के मुख्य स्थान पर चन्द्र-सूर्य हैं, इनके परिवार में ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत के दोनों ओर ६६-६६ पंक्तियों से होकर ढाई द्वीप में १३२ सूर्यचन्द्र अपने अपने परिवारों के विमानों के साथ सतत प्रदक्षिणावर्त घूम रहे हैं। इसकी विशेष जानकारी **मण्डल प्रकरण ग्रन्थ (पदार्थ प्रकाश - भाग २५)** में दी गई है। **(देखिए चित्र-१, पेज १३)**

अब ध्यान से विचार करने पर यह पता चलता है, कि दो चन्द्रों का आज्ञावर्ती परिवार एकत्र होकर पूरा वर्तुल पूर्ण करेंगा और एक चन्द्र का आज्ञावर्ती परिवार आधा वर्तुल पूर्ण करेगा।

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और प्रायः ग्रह भी उत्तर-दक्षिण ५१० योजन के पट्टे में घूमते हैं, और तारे सर्वत्र व्याप्त हैं। उपरान्त तारों की संख्या ६६९७५ कोड़ाकोड़ी होने पर भी उनकी असर सृष्टि पर इतनी नहीं होती होगी, इसीलिए युगलिक क्षेत्रों में काल परिवर्तन की असर नहीं दिखती। इसलिए ज्ञानियों को तारों के भ्रमण से होने वाले योग बताने का कोई प्रयोजन नहीं होता। **(देखिए चित्र-२, पेज १३)** इसलिए अब सूर्य, चन्द्र, ८८ ग्रह और २८ नक्षत्रों के योग बताए गए हैं और उन्हीं से ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति होती है। किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है, कि (१) सूर्यादि चार में से किसे मुख्य मानकर योग दिखाए गए हैं? (२) भिन्न-भिन्न प्रकार के कितने योग होते हैं?

उत्तर १ : (र) किसे मुख्य मानकर विविध योगों का विचार करना चाहिए - इस प्रश्न का उत्तर जानने से पूर्व इतना अवश्य विचार करना होगा, कि एक चन्द्र या सूर्य का परिवार **(देखिए चित्र-३, पेज १४)** जो अर्धाकाश में = **५४९०० अवकाशी खण्ड** में (शास्त्रों में मेरू के आस-पास किसी भी मण्डल के वर्तुलाकार अवकाश के या अर्धावकाश के किए गए काल्पनिक विभागों में) स्थित है, उन ५४९०० खण्डों में (कुल [१]१०९८०० खण्डों में) सम्पूर्ण रूप से सूर्य, चन्द्र, ग्रह या नक्षत्रों में से कौन कहाँ स्थित है? तो इसका उत्तर है, कि सूर्य और चन्द्र तो एक-एक हैं, इसलिए निश्चित रूप से एकाद

---

१. अष्टानवतिशताढ्यं लक्षं संपूर्णमंडलेषु स्युः ।
सर्वेष्वंशा एष च विज्ञेयो मंडलच्छेदः ।।५७४।। लोकप्रकाशः सर्ग-२०

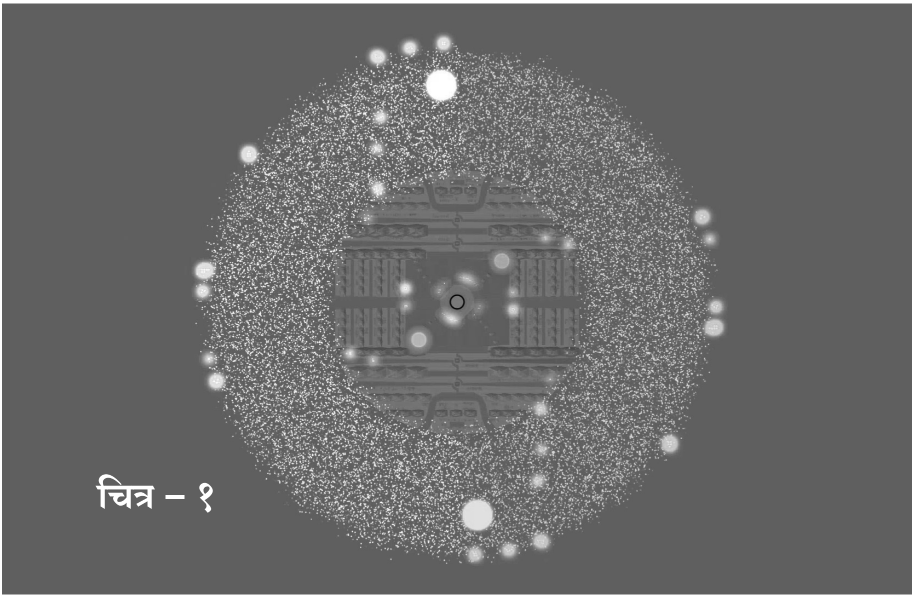

जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत के आसपास प्रदक्षिणावर्त घूम रहे
२ चन्द्र, २ सूर्य, १७६ ग्रह, ५६ नक्षत्र और १,३३,९५० को.को. तारे

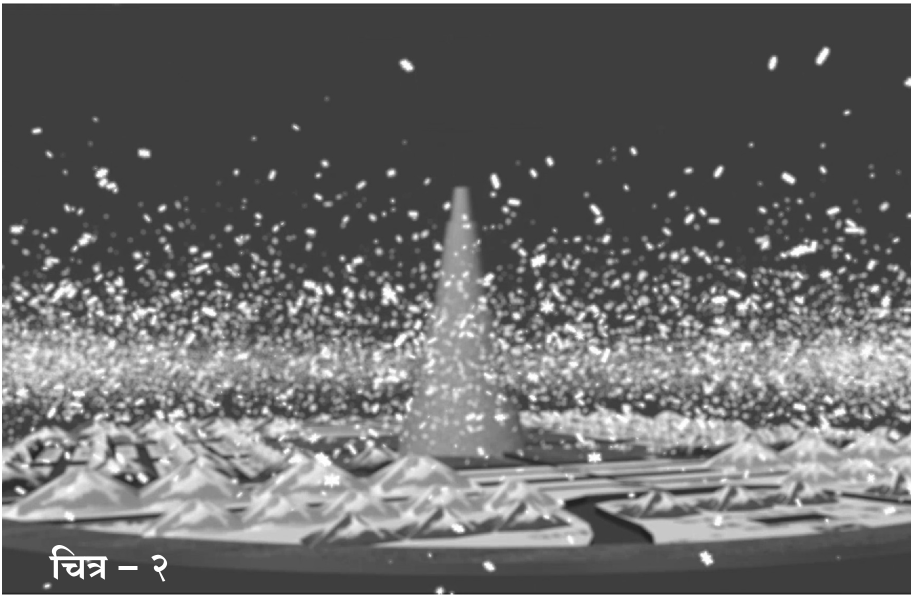

जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत के आसपास घूम रहे १,३३,९५० को.को. तारे

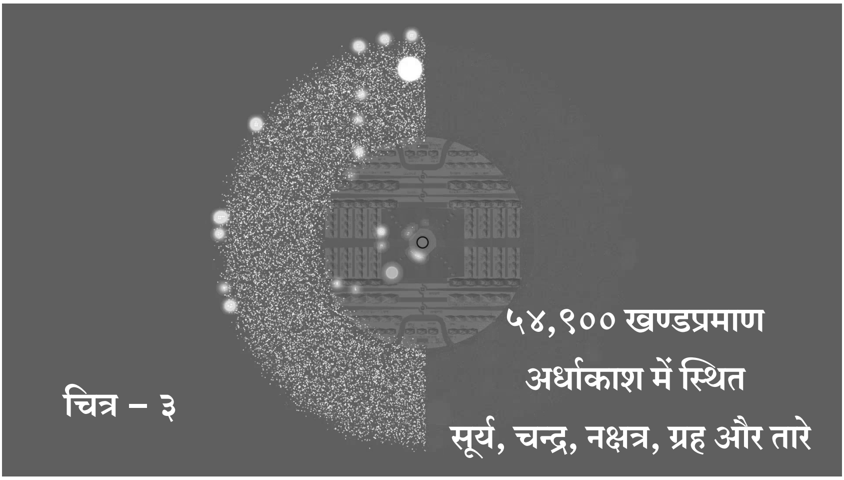

चित्र – ३

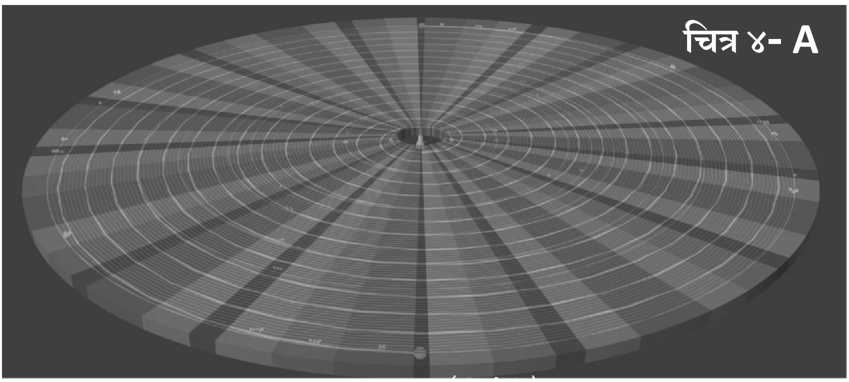
चित्र ४- A

५४,९०० खण्डप्रमाण अर्धाकाश में फैले भिन्न–भिन्न प्रमाण के ↑
↓ (रंग से अलग–अलग) आधिपत्य क्षेत्र वाले २८ नक्षत्र

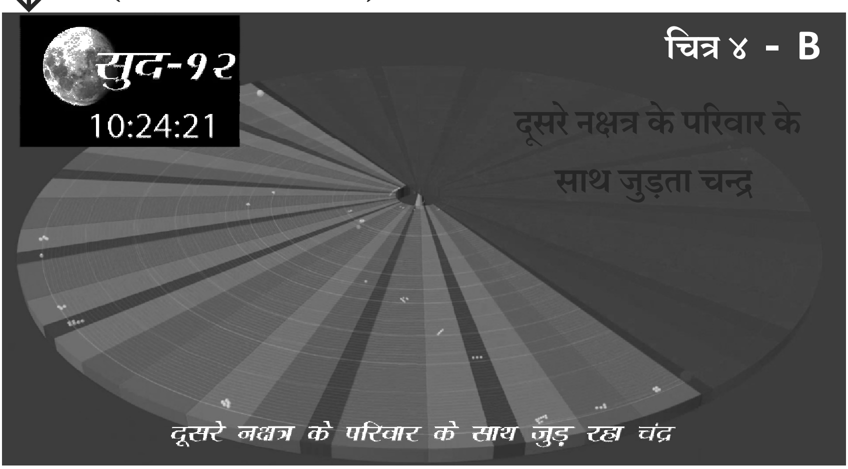

चित्र ४ - B

खण्ड में स्थित होंगे, और बारी–बारी से सभी खण्डों में पहुँचते होंगे, किन्तु एक साथ सभी खण्डों में स्थित नहीं रहते। फिर ग्रह भी ८८ होने के बावजूद उनके मण्डल, गति आदि अनियमित होने के कारण सभी अवकाशीय खण्डों में वे होंगे ही, यह बात निश्चित तौर पर नहीं कही जा सकती। अनेक बार एक से अधिक ग्रह एक ही अवकाशीय खण्ड में हो, ऐसा दिखता है, इसलिए यह विकल्प उचित नहीं लगता । **दूसरी ओर नक्षत्रों की संख्या मात्र २८ है, न बहुत अधिक, न बहुत अल्प। उपरान्त उनके मण्डल और स्थान शास्त्रोक्त तरीके से बिठाने पर पता चलता है, कि नक्षत्र अमुक आकाश खण्ड में स्थित होने पर भी उनकी सीमा[१] (आधिपत्य) का क्षेत्र बहुत लम्बा है, और इस गणित से यह पता चलता है, कि २८ नक्षत्र ५४९०० अवकाशीय खण्ड में एक साथ फैलकर रहते हैं । ५१० योजन उत्तर–दक्षिण और ५४९०० खण्ड प्रमाण क्षेत्र पूर्व–पश्चिम – इस अवकाश का एक भी भाग ऐसा नहीं है, कि जिसमें एकाद नक्षत्र या नक्षत्र का आधिपत्य क्षेत्र न हो ।** दो चन्द्रों के परिवार के ५६ नक्षत्रों के दृष्टिकोण से विचार करें तो १०९८०० खण्ड का एक भी भाग ऐसा नहीं है जिसमें एकाद नक्षत्र का आधिपत्य क्षेत्र न हो। **देखिए चित्र–४**

जिस प्रकार कोई चक्रवर्ती पूरे भरतक्षेत्र का राजा होने पर भी अलग–अलग प्रादेशिक राजा ही उस प्रदेश विशेष के राजा के रूप में प्रसिद्ध होते हैं, (और उन प्रादेशिक राजाओं के आधिपत्य क्षेत्र के समूह से ही समग्र भरतक्षेत्र बनता है) उसी प्रकार सूर्य और चन्द्र, इन्द्र होने पर भी अवकाश के उन निश्चित प्रदेशों में उन नक्षत्रों का प्रादेशिक राजा की भांति आधिपत्य होता है। और समग्र नक्षत्रों के आधिपत्यक्षेत्र का समूह ही ५४,९०० खण्ड प्रमाण अर्धअवकाश है। **इसलिए नक्षत्र सर्वव्यापी होने के कारण योग के केन्द्र स्थान पर नक्षत्र होना चाहिए, ऐसा ठोस रूप से पता चलता है ।**

(b) उपरान्त, **नक्षत्रों की संख्या मध्यम होने के कारण हम उनके गणित का अनुमान लगा सकते हैं, इसलिए सर्वज्ञों की अवकाशीय प्ररूपणा के केन्द्र में नक्षत्र ही होने चाहिए, ऐसा लग रहा है ।**

---

१. योगः किम् ? उच्यते, नक्षत्रसीमावर्त्तिना चंद्रेण सह नक्षत्राणां संबंधो योगः ।।
इति मंडल प्रकरण–गा.८६ टीकायां

(c) मेरू के पास घूमते (५४,९००+५४,९०० खण्ड = १,०९,८०० खण्ड प्रमाण) अपना–अपना एक सम्पूर्ण मण्डल पूर्ण करने वाली गति में क्रमशः [1]**तारे सर्वाधिक शीघ्र हैं, फिर नक्षत्र, ग्रह, सूर्य और चन्द्र क्रमशः धीमी–धीमी गति वाले हैं;** या फिर यूँ कहें, कि अपना एक मण्डल पूर्ण करने की गति में **सबसे मन्द गति चन्द्र** की है, फिर सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और फिर तारे क्रमशः तेज एवं अधिक तेज गति वाले हैं। **किन्तु नक्षत्र अन्य अवकाशीय पिण्डों से तेज गति वाले होने के साथ अमुक निश्चित अवकाशीय खण्ड में एक–एक नक्षत्र ही होने के कारण उनके साथ अन्य अवकाशीय पिंडों के योग समझना और समझाना अत्यन्त सुगम बन जाता है। उपरोक्त सन्दर्भ को ध्यान में लेने से यह निश्चित होता है, कि योगों के केन्द्रस्थान में नक्षत्र ही हैं। अतः नक्षत्रों का ज्ञान और उनकी चाल ही ग्रहगति के गणित और ज्योतिष शास्त्र का मूल है।**

उत्तर – २ : योग कितने हैं? कौन–कौन से हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार है :

इन प्रश्नों पर चर्चा करने से पूर्व हम फिर से याद कर लें, कि आकाशीय पिण्डों के योग की विचारणा के केन्द्रस्थान में नक्षत्र हैं, क्योंकि वे Speedy हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। **इसलिए शीघ्रगति से आगे बढ़ने के द्वारा ये दूसरे सूर्य, चन्द्र और ८८ ग्रहों से क्रमशः मिलते रहेंगे, या चन्द्रादि की गति धीमी होने के कारण क्रमशः उनके साथ रहने वाले नक्षत्रों के पीछे चलते हुए अन्य २७ नक्षत्रों से क्रमशः मिलेंगे।** इस प्रकार अवकाश का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर निम्नांकित भिन्न–भिन्न योग बन सकते हैं :

Note : N = नक्षत्र, S = सूर्य, C = चन्द्र, G = ग्रह

---

१. गतेः शीघ्रविभागस्त्वेवम्-सर्वमंदगतिश्चंद्रः तस्माच्छीघ्रो रविः, तस्माद्ग्रहाः तेभ्यो नक्षत्राणि, ततस्ताराः । ग्रहमध्ये तु बुधाच्छुक्रः शुक्रस्मंगलो, मंगलाद् बृहस्पंतिबृहस्पतेः शनिः शीघ्र इति संग्रहणीवृत्तिगतम् ।

क्रम	योग का प्रकार	भेद	विशेष (उपयोग)
१.	NN	× सम्भव नहीं	भिन्न–भिन्न खण्डों में होने के कारण
२.	NS	✓ २८	सूर्य का सायन वर्ष तय होता है
३.	NC	✓ २८	नक्षत्र माह बनता है
४.	NG	✓ २८ X ८८	ज्योतिषशास्त्र में
५.	NGC	✓ अगणित प्रकार	ज्योतिषशास्त्र में
६.	NGS	✓ अगणित प्रकार	ज्योतिषशास्त्र में
७.	NGG	✓ अगणित प्रकार	ज्योतिषशास्त्र में
८.	NSC	✓ २८ प्रकार से	ज्योतिषशास्त्र में + अमावस का ज्ञान, तिथि का ज्ञान
९.	NSCG	✓ अनेक	ज्योतिषशास्त्र में

इसके उपरान्त उन प्रत्येक नक्षत्रों से अनन्तर स्थान में या परंपर स्थान में (थोड़ा दूर) स्थित सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि को जानने से भी ज्योतिषशास्त्रों के रहस्य प्राप्त होते हैं। अतः इतना तय है, कि नक्षत्र से सम्बन्धित ज्ञान में और नक्षत्र–आधिपत्य के विषय के ज्ञान में नक्षत्रों की संख्या, गति, रचनादि विषय के मामले में यदि सहज भी भूल रह गया, तो ग्रहगति गणित या ज्योतिषशास्त्र और मुहूर्त के विषय के फलादेश के अनुमान भूल से भरे होंगे। इसीलिए सर्वज्ञता के प्रकाश में चर ज्योतिष में नक्षत्र से सम्बन्धित जो ज्ञान मिलता है, उसके रहस्य तक पहुँचेंगे तो ही ज्योतिष के सत्य तत्त्व तक पहुँच पाएँगे ।

जैन आगमों में प्राप्त नक्षत्र-सम्बन्धित हकीकतें

जिनमत में नक्षत्रों का अपना विशेष महत्त्व है। सूर्य और चन्द्र की तुलना में ऋद्धि में अल्प होने पर भी ज्योतिष शास्त्रों में नक्षत्रों का विशेष महत्त्व है। उपरान्त जिस प्रकार बड़े श्रेष्ठियों का अपना एक मूल घर होता ही है, साथ ही अलग–अलग फार्म–हाउस भी होते हैं, वैसे ही नक्षत्रों के अधिपति देवों के भी अपने २–३–४ से संख्याता विमान – तारे (ज्योतिष चक्र के पांचवें भेद के रूप में वर्णित तारों से भिन्न) होते हैं। **प्रत्येक नक्षत्र में भिन्न–भिन्न संख्या में तारे होते हैं, उनके समूह से बनने वाले वे नक्षत्र एक निश्चित आकार के होते हैं। भिन्न–भिन्न नक्षत्रों के समूह को राशि कहते हैं और राशि भी विशिष्ट आकार की होती है।** उस आकार के अनुरूप उनका नाम होता है, जो व्यवहार में अत्यन्त प्रचलित है। इस प्रकार २८ नक्षत्र, उनके समूह से बनने वाली १२ राशियाँ और उनके द्वारा प्रत्येक राशि के प्रमाण वाले आकाश के (सूर्य–चन्द्रादि के चार क्षेत्र–५१० योजन) १२ भागों की कल्पना की गई है। इनकी आकृति पेज न. २५ पर दी गई है।

१–१ भाग को सूर्य पूर्ण करे, या १–१ राशि के साथ सूर्य का संयोग पूर्ण हो तब १–१ सूर्यमास पूर्ण होता है। ६ महीनों में ६ राशि पूर्ण होने पर सूर्य का दक्षिणायन पूर्ण होता है, फिर आने वाले ६ महीनों में बाकी की ६ राशियाँ पूर्ण होने पर सूर्य का उत्तरायण पूर्ण होता है। इस प्रकार सूर्यसंवत्सर पूर्ण होता है। उपरान्त नक्षत्र और चन्द्र का योग भी सतत होता है। अमुक निश्चित नक्षत्रों के साथ चन्द्र के योग से कार्तिक, मार्गशीर्ष आदि महीनों के नाम एवं वृद्धिमास की (वर्तमान लौकिक शास्त्रों के अनुसार क्षयमास की) व्यवस्था भी होती है। इस प्रकार नक्षत्रों की जानकारी के बिना ज्योतिषचक्र का ज्ञान अधूरा है, अतः नक्षत्रों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है, जो नीचे दी गई बातों द्वारा स्पष्ट की गई है:

(a) नक्षत्रों के नाम, स्थान, आकार, चारक्षेत्र आदि की जानकारी

(b) राशि की रचना,

(c) चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योग, और

(d) सूर्य के साथ नक्षत्र–राशि का योग।

(a) नक्षत्रों के नाम, स्थान, आकार, चार क्षेत्र आदि की जानकारी

न क्षरति इति नक्षत्र – जो अपने स्थान से कभी च्युत नहीं होता उसे नक्षत्र कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रहादि मेरू के चारों ओर वलयाकार में घूमते हैं, अर्थात् उनके उत्तर–दक्षिण चार (गति) सम्भव हैं, किन्तु नक्षत्र वर्तुल आकार में, अर्थात् एक नियत वर्तुल मार्ग पर रहकर मेरू के आस–पास प्रदक्षिणाकार में घूमते हैं, अतः इनके लिए उत्तर–दक्षिण चार (गति) सम्भव नहीं है। इन सबका कुल चारक्षेत्र भी सूर्यादि के अनुसार जम्बूद्वीप की जगती (किले) से १८० योजन अन्दर से लेकर लवण समुद्र में ३३० योजन तक, अर्थात् ५१० योजन का है। इसके अन्दर भिन्न–भिन्न नक्षत्र अपने–अपने नियत स्थान पर रहकर ही मेरूपर्वत के चारों ओर सतत घूमते हैं। एक चन्द्र के १५ मण्डल हैं, एक सूर्य के १८३ मण्डल हैं और उनके परिवारभूत २८ नक्षत्र अपने–अपने निजी १–१ मण्डल में, और कुल ८ मण्डल में रहकर ही गति करते हैं। चन्द्र के कौनसे मण्डल में ये स्थित हैं, उससे इनका चन्द्र के साथ योग तय होता है। नक्षत्र के दो मण्डल जम्बूद्वीप के आकाश में है, और बाकी छः मण्डल लवण समुद्र के आकाश में है।

[१]नक्षत्र की मुहूर्त गति –

प्रथम मण्डल में नक्षत्र की मुहूर्त–गति

१ युग के १८३० अहोरात्रि में नक्षत्र के १८३५ अर्धमण्डल होते हैं।

∴ १८३५ अर्धमण्डल में १८३० अहोरात्रि गुजरे (बीते/व्यतीत हो), तो

२ अर्धमण्डल में कितने अहोरात्रि होंगे :

$$\frac{१८३० \times २}{१८३५} = \frac{३६६०}{१८३५} = ५९ \frac{१५३५}{१८३५} \text{ मुहूर्त}$$

१. सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र की भिन्न–भिन्न मण्डलों की मुहूर्त-गति के ज्ञान हेतु मण्डल प्रकरण गाथा नं. २० से २७ पढ़िए, उपरान्त क्षेत्रलोक प्रकाश भी पढ़िए (सर्ग-२०)

$५९ \frac{१५३५}{१८३५}$ मुहूर्त में नक्षत्र ३१५०८९ यो. का अन्तर तय (पार) करे, तो १ मुहूर्त में :

$३१५०८९ \div ५९ \frac{१८३५}{१५३५}$ अन्तर पार होगा

$= \frac{३१५०८९ \times १८३५}{१०९८००}$ यो.

$= ५२६५ \frac{१८२६३}{२१९६०}$ यो. अन्तर १ मुहूर्त में पार होगा

सर्वबाह्य मण्डल में नक्षत्र की मुहूर्त गति = $३१५०८९ \div ५९ \frac{१८३५}{१५३५}$

$= \frac{३१५०८९ \times १८३५}{१०९८००} = \frac{३१८३१५ \times ३६७}{२१९६०}$

$= ५३१९ \frac{१६३६५}{२१९६०}$ यो.

शेष नक्षत्र मण्डलों की मुहूर्तगति =उस मण्डल की परिधि

$५९ \frac{१८३५}{१५३५}$ यो.

ग्रहों और तारों की मुहूर्तगति वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रों में गहराइ से प्राप्त नहीं होती है ।

न.	नक्षत्र का नाम	नक्षत्र मण्डल की सं.	चन्द्र मण्डल की सं.	तारों की सं.	आकार	रचना
१)	अभिजित	१	१	३	गोशीर्षावली	
२)	श्रवण	१	१	३	कासार	
३)	धनिष्ठा	१	१	५	पक्षिपंजर	
४)	शतभिषा	१	१	१००	पुष्पमाला	
५)	पूर्व भाद्रपदा	१	१	२	अर्द्धवापी	

६)	उत्तर भाद्रपदा	१	१	२	अर्द्धवापी	
७)	रेवती	१	१	३२	नौकासंस्थान	
८)	अश्विनी	१	१	३	अश्वस्कन्ध	
९)	भरणी	१	१	३	भगसंस्थान	
१०)	कृत्तिका	३	६	६	क्षुरधारा	
११)	रोहिणी	४	७	५	शकटोद्धि	
१२)	मृगशीर्ष	८	१५	३	मृगशीर	
१३)	आर्द्रा	८	१५	९	रुधिरबिन्दु	
१४)	पुनर्वसु	२	३	५	तुला	
१५)	पुष्य	८	१५	३	वर्द्धमानक	
१६)	आश्लेषा	८	१५	५	पताका	
१७)	मघा	२	३	७	प्राकार	
१८)	पूर्वा फाल्गुनी	१	१	२	अर्द्धपल्यंक	
१९)	उत्तरा फाल्गुनी	१	१	२	अर्द्धपल्यंक	
२०)	हस्त	८	१५	५	हस्ततल	
२१)	चित्रा	४	७	१	मुखमंडन सुवर्ण फूल	
२२)	स्वाति	१	१	१	कीलक	
२३)	विशाखा	५	८	५	पशुदामन	
२४)	अनुराधा	६	१०	४	एकावली	
२५)	ज्येष्ठा	७	११	३	गजदंत	
२६)	मूल	८	१५	११	वृश्चिक पुच्छि	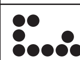
२७)	पूर्वाषाढ़ा	८	१५	४	गजविक्रम	
२८)	उत्तराषाढ़ा	८	१५	४	सिंहनीषदन	

नोंध : नक्षत्र रचना के सचोट चित्र के जानने के लिए हमारा संपर्क करे ।

(b) राशियों की रचना: राशि = समूह, भिन्न–भिन्न नक्षत्रों का समूह ही राशि है । **वास्तव में आकाश का परिकल्पित एक निश्चित विभाग, और उस निश्चित विभाग में स्थित नक्षत्रों के तारों से रचित तथाप्रकार का विशिष्ट आकार राशि है ।** एक चन्द्र तथा एक सूर्य के परिवार में रहे २८ नक्षत्र अपने–अपने सूर्य–चन्द्र के अर्धमण्डल में पूर्व–पश्चिम सम्पूर्ण रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं। और दूसरी ओर अन्य सूर्य–चन्द्र के २८ नक्षत्र उनके अर्धमण्डल को व्याप्त होकर स्थित हैं।

किसी भी नक्षत्र के समीप स्थित प्रदेश उस नक्षत्र का विस्तार माना जाता है। जिस प्रकार कोई भी राजा रहता अपने महल में है, किन्तु उसका आधिपत्य पूरे राज्य में और कभी–कभी राज्य के बाहर स्थित जंगलों में भी होता है, उसी प्रकार उन नक्षत्रों के विमान (उन प्रत्येक तारों के विमान) एक गाउ के हैं, किन्तु उनका आधिपत्य एक निश्चित क्षेत्र (बहुत बड़े) तक फैला हुआ माना जाता है। इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र के आधिपत्य से युक्त विस्तार की कुल राशि = एक सूर्य द्वारा अहोरात्र में (३० मुहूर्त या २४ घण्टे में) पार किया जाने वाला अन्तर = सूर्य या चन्द्र का एक अर्धमण्डल = दो सूर्य या दो चन्द्र के बीच का अन्तर। उपरोक्त अन्तर से युक्त आकाश में २८ नक्षत्रों के परिवार सम्पूर्ण रूप से अपने–अपने निश्चित स्थान और क्षेत्र से युक्त पथ पर पूर्व–पश्चिम सतत परिभ्रमण करते हैं ।

आकृतिः २४

सुदी पूर्णिमा के सूर्य के १ अर्धमण्डल के विस्तार में स्थित २८ नक्षत्र

A.

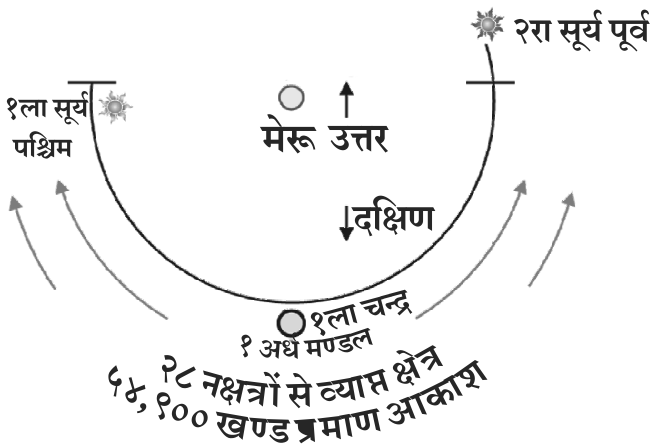

B.

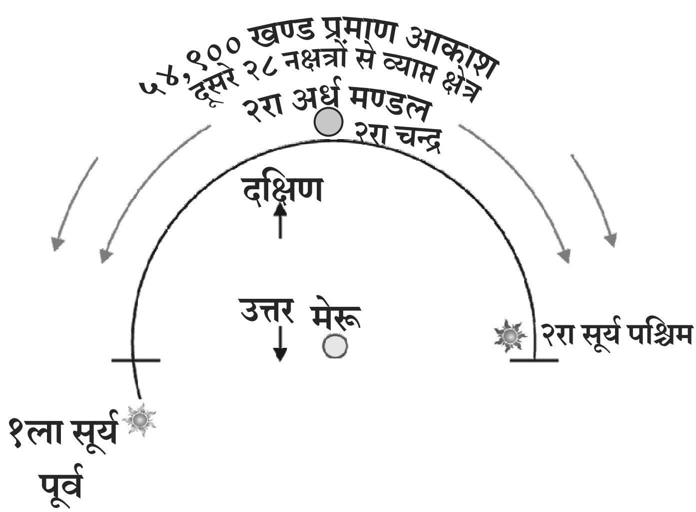

आकृतिः २५

हमारी दृष्टि की मर्यादा के कारण दिखने वाली आकृति सुदी–१५ के अनुसार

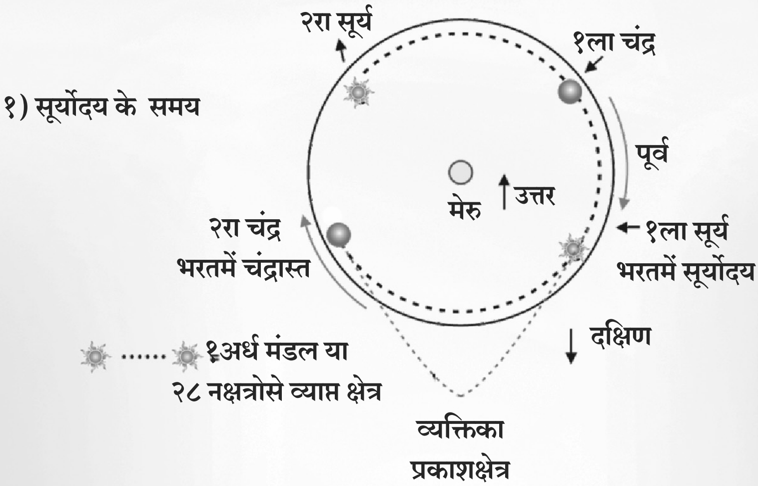

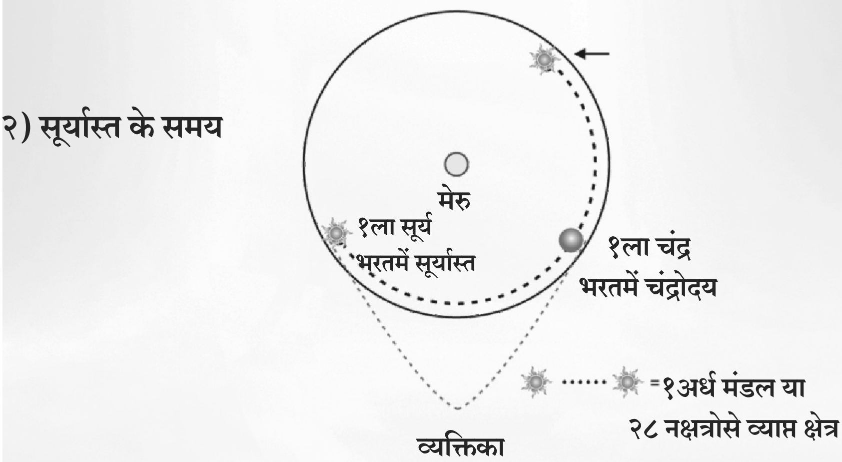

अब नक्षत्रों के विस्तार का कुल समूह, या सूर्य द्वारा अहोरात्रि में व्यतीत होते विस्तार को एक सरीखे १२ भाग में विभाजित करने से बनने वाली रचना राशि कहलाती है।

नोट : समझने में सरलता हो, इस हेतु अर्धवर्तुल की जगह सीधी रेखा द्वारा राशियों का आयोजन बताया गया है।

आकृति: २६ **मकरसंक्रान्ति के दिन सूर्य–चन्द्र और राशियों का स्थान**

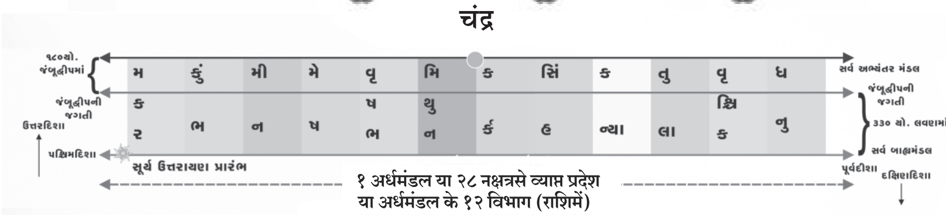

इस प्रकार २८ नक्षत्रों को १२ से भाग करने से $२\frac{१}{३}$ आएगा।

इस प्रकार (१) कभी दो नक्षत्र पूरे + तीसरे नक्षत्र का कुछ भाग, या

(२) कभी १ नक्षत्र पूरा + २ नक्षत्रों का कुछ भाग = भिन्न–भिन्न राशि बनेगी, तो कभी २ या ४ नक्षत्रों के संयोग से भी राशि बनती है। नक्षत्रों का आकार छोटा–बड़ा हो सकता है, सूर्य–चन्द्र के साथ उनका संयोग लम्बा–छोटा हो सकता है, किन्तु प्रत्येक राशि के माप में कोई फर्क नहीं पड़ता, इसलिए राशि के साथ सूर्य–चन्द्र का संयोग समान समय का होता है। सूर्य लगभग $३०\frac{१}{२}$ दिन एक राशि में रहता है। $\therefore$ $३०\frac{१}{२}$ x १२ राशि = ३६६ दिन में सभी राशियों का भोग (भ्रमण) पूर्ण करता है = २ अयन पूर्ण करता है, तथा चन्द्र $२७\frac{२१}{६७}$ दिन में दो अयन = १२ राशियों को भोगता है। $\therefore$ $२७\frac{२१}{६७}$ ÷ १२ राशि = **२ दिन ६ घण्टे ३७ मिनिट में चन्द्र १ राशि के साथ भोग (भ्रमण) करता है।**

सूर्य–चन्द्र कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धन इन ६ राशियों में उत्तर से दक्षिण की ओर सरकते जाते हैं, तथा मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृषभ और मिथुन इन ६ राशियों में दक्षिण से उत्तर की ओर सरकते हैं।

(C) चन्द्र के साथ नक्षत्रों के योगः

इस पदार्थ को समझने से पहले एक काल्पनिक उदाहरण देखते हैं। १ लाख कि.मी. व्यास वाली एक वर्तुल जगह है। इतनी विशाल जगह में आवश्यक माल–सामान पहुँचाने हेतु उस वर्तुल की सीमा के १८० कि.मी. अन्दर से लेकर बॉर्डर के बाहर ३३० कि.मी. तक कुल ५१० कि.मी. के वलयाकार पट्टे पर अलग–अलग ऊँचाई के ३ ओवरब्रिज बनाए गए हैं। इनकी विशेष जानकारी इस प्रकार है:

१. **प्रथम ब्रिज** ५१० कि.मी. चौड़ाई वाला ३ लाख १६ हजार कि.मी. परिधि वाला, अर्थात् १ लाख कि.मी. के वर्तुल को सम्पूर्ण रूप से कवर करते हुए स्थित है। उसका रास्ता १८३ लेन में विभाजित है और वह परस्पर मिला हुआ होने के कारण **परस्पर आवागमन का व्यवहार है।**

२. **दूसरा ब्रिज** प्रथम ब्रिज के ऊपर उसी प्रकार बनाया गया है। उसका रस्ता १५ लेन में विभाजित है। परस्पर जुड़ा हुआ होने के कारण परस्पर **आवागमन का व्यवहार है।**

३. **तीसरा ब्रिज** दूसरे ब्रिज के ऊपर बनाया हुआ है, किन्तु इसमें भेद इतना ही है, कि इस तीसरे ब्रिज के आठ भेद हैं। ये सभी १ लेन वाले ही मार्ग हैं, जो मात्र समान लेवल पर ही उस ब्रिज पर स्थित हैं। बाकी **आठों का परस्पर कोई योग नहीं होता, इसलिए उनमें परस्पर आवागमन का व्यवहार नहीं है।**

- प्रथम ब्रिज पर सदैव **एक ही ट्रक क्रमशः १८३ लेन** में ६० कि.मी. प्रति घण्टे की रफ्तार से सतत चलता है।
- दूसरे ब्रिज पर सदैव **एक ही ट्रक क्रमशः १५ लेन** में ५० कि.मी. प्रति घण्टे की रफ्तार से चलता है।
- तीसरे ब्रिज पर अलग–अलग आठ लेन में अलग–अलग स्थानों पर रही **छोटी–छोटी २८ गाड़ियाँ** ७० कि.मी. प्रति घण्टे की रफ्तार से चलती हैं। ये गाड़ियाँ भी अलग–अलग वर्तुल पथ पर उत्तर–दक्षिण

रेखा में एक पंक्ति में नहीं, किन्तु पूर्व–पश्चिम विविध वलयपथ पर किन्तु एक–दूसरे से आगे–पीछे अवस्थित होकर परिक्रमण करती हैं, इसलिए जमीन पर रहे मनुष्य को दिखने वाले दृश्य में :

१. मध्यमगति वाली प्रथम क्रमांक वाले ब्रिज के ट्रक की तुलना में दूसरे ब्रिज की ट्रक वर्तुलाकार गति में एकदम धीमी गति वाली दिखेगी, किन्तु

२. परिधि से केन्द्र की ओर या केन्द्र से परिधि की ओर,
दूसरे लेन वाली ट्रक अतिशीघ्र गति वाली
पहले लेन वाली ट्रक मध्यम गति वाली, और
तीसरे लेन वाली गाड़ी शून्य गति वाली दिखेगी।

३. मात्र दूसरे और तीसरे ब्रिज को देखने से :

२८ गाड़ियों की गति शीघ्र होने के कारण वे क्रमशः ट्रक के ऊपर की तरफ दिखेगी। अर्थात् दूसरे ब्रिज पर ट्रक जिस स्थान पर है, उसी स्थान पर तीसरे ब्रिज पर १ नम्बर वाली गाड़ी है। उसकी गति अधिक शीघ्र होने के कारण वह कम समय में आगे बढ़ेगी। इसलिए तीसरे ब्रिज पर २ नम्बर की गाड़ी उस स्थान पर आकर ट्रक के ऊपर दिखेगी। इसी प्रकार क्रमशः ३ से २८ नम्बर की गाड़ियाँ भी ट्रक के ऊपर थोड़े समय के लिए दिखेगी। अर्थात् गाड़ियों की गति ट्रक की गति से अधिक तेज होने के कारण दूसरे ब्रिज के ट्रक के ऊपर से ऊपर वाले तीसरे ब्रिज की सभी २८ गाड़ियाँ क्रमशः एक के बाद एक निकलेंगी ।

दूसरे ब्रिज की ट्रक उस समय १५ में से किसी भी लेन में हो सकती है, और तीसरे ब्रिज की वह गाड़ी ८ में से किसी भी एक लेन में हो सकती है । यानी, ट्रक ५१० यो. चौड़ाई में या १५ लेन में से किसी भी लेन में हो और उसके ऊपर रही गाड़ी ८ में से किसी भी ट्रैक में हो तो भी एक ही गाड़ी उस ट्रक के ऊपर और समांतर साथ है ऐसा दिखेगा। बाकी की गाड़ियाँ ऊपर होने पर भी समांतर साथ न दिखते हुए आगे–पीछे ही दिखेगी । कदाचित् ट्रक जिस लेन में है उसके ठीक ऊपर स्थित किसी ट्रैक में रही गाड़ी भी आगे–पीछे हो, यह सम्भव है और अन्य ट्रैक में रही गाड़ी ट्रक

के ठीक ऊपर या समांतर साथ है, ऐसा लगेगा। इस प्रकार दो ट्रक और गाड़ी के बीच तीन प्रकार का सम्बन्ध होगा। या फिर समान त्रिज्या रेखा पर ट्रक और गाड़ियों का परस्पर सम्बन्ध तीन प्रकार से होगा।

- **ट्रक और गाड़ी एक ही लेवल पर भिन्न–भिन्न ऊँचाई पर दिखे – प्रमर्द योग,** या भिन्न–भिन्न ऊँचाई के समतलों में समान्तर लम्बक्षितिज वलयपथ पर गाड़ी और ट्रक एक–दूसरे के ऊपर–नीचे साथ–साथ चलते हुए दिखे, यह प्रमर्द योग हुआ।
- **ट्रक गाड़ी से दूर स्थान पर भिन्न–भिन्न ऊँचाई पर दिखे – उत्तराभिमुख योग,** या भिन्न ऊँचाई के समतलों में समान त्रिज्यारेखा पर ट्रक गाड़ी से परिधि की दिशा में दिखे, यह उत्तराभिमुख योग हुआ।
- **ट्रक गाड़ी से समीप स्थान पर भिन्न–भिन्न ऊँचाई पर दिखे – दक्षिणाभिमुख योग,** या भिन्न ऊँचाई के समतल में समान त्रिज्यारेखा पर ट्रक गाड़ी से केन्द्र की दिशा में दिखे, यह दक्षिणाभिमुख योग हुआ ।

यही वस्तु पहले ब्रिज और तीसरे ब्रिज सभी जगह पर भी जान लें। बस, इसी दृष्टान्त को अब ज्योतिषचक्र में लागू करते हैं ।

पहले ब्रिज की ट्रक : समभूतला से ८०० यो. ऊँचाई पर १८३ मण्डलों में ५१० यो. क्षेत्र में मेरूपर्वत के पास अयनमार्ग में फिरते हुए **सूर्य का विमान** ।

दूसरे ब्रिज की ट्रक : ८८० यो. ऊँचाई पर अलग–अलग १५ मण्डलों में ५१० यो. विस्तार में मेरूपर्वत के पास अयनमार्ग में फिरते हुए **चन्द्र का विमान** ।

तीसरे ब्रिज की गाड़ियाँ : ८८४ यो. ऊँचाई पर अलग–अलग ८ वर्तुलपथ पर ५१० यो. क्षेत्र में मेरूपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए **२८ नक्षत्रों के विमान ।**

प्रश्न : चन्द्र शीघ्रगति क्यों है?

उत्तर : चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों की वर्तुलाकार गति क्रमशः अधिक शीघ्र है, नक्षत्र निश्चित वर्तुलपथ पर घूमते हैं, इसलिए (डळीरश्र) गति सम्भव नहीं है । चन्द्र २७ $\frac{२१}{६७}$ दिन में ५१० योजन में अयनमार्ग पर एक

चक्कर पूर्ण करता है, इसलिए चन्द्र केन्द्र या परिधि की दिशा में शीघ्रमार्गी लगता है।

अब वर्तुलपथ और अयनमार्ग की (उत्तरायण–दक्षिणायन की) गतियों की भिन्नता के कारण सूर्य और नक्षत्रों की और चन्द्र और नक्षत्रों के योगों की रचना होगी।

नक्षत्रों की गति शीघ्र होने के कारण चन्द्र या सूर्य के साथ कोई निश्चित समय पर जो नक्षत्र होगा, वह थोड़े समय में चन्द्र या सूर्य से आगे निकल जाएगा और पीछे वाला नक्षत्र चन्द्र–सूर्य से जुड़ेगा। **प्रस्तुत में नक्षत्र का विमान १ गाउ का होने पर भी उसका आधिपत्य क्षेत्र तो पूर्व–पश्चिम हजारों योजन प्रमाण है, इसलिए उस क्षेत्र के अन्दर चन्द्र या सूर्य आते हैं, तो उस नक्षत्र के साथ उनका योग हुआ जानें ।**

पहले देखा उसके अनुसार प्रत्येक नक्षत्र का आधिपत्य क्षेत्र निश्चित है।

१ सूर्य एक मुहूर्त में १८३० अंश गति करता है

१ चन्द्र एक मुहूर्त में १७६८ अंश गति करता है

१ नक्षत्र एक मुहूर्त में १८३५ अंश गति करता है

उपरान्त, सभी नक्षत्रों के आधिपत्य क्षेत्र को जोड़ा जाए तो ५४,९०० अंश आता है, और यह माप सूर्य द्वारा अहोरात्रि में व्यतीत होने वाला क्षेत्र है। एक मुहूर्त में १८३० अंश हुआ, इसलिए ३० मुहूर्त में ५४९०० अंश का ताला मिल जाता है।

अब प्रत्येक मुहूर्त में नक्षत्र १८३५ अंश गति करता है। प्रत्येक मुहूर्त में चन्द्र १७६८ अंश गति करता है। नक्षत्र की तुलना में चन्द्र की गति प्रति मुहूर्त ६७ अंश कम है, इसलिए कुल २७ दिन $\frac{२१}{६७}$ समय में = ५४९०० अंश चन्द्र पीछे रह जाता है

और दूसरे २८ नक्षत्रों के साथ योग करता है, जो इस प्रकार है:

१ मुहूर्त में ६७ अंश पीछे रहता है,

∴ ३० मुहूर्त में ६७ x ३० = २०१० अंश पीछे रहता है,

इसलिए $२७\frac{२१}{६७}$ दिन x २०१० = ५४९०० अंश आता है, यह माप नक्षत्र के क्षेत्र की लम्बाई का, या अहोरात्रि में सूर्य द्वारा काटे गए अन्तर का है।

नक्षत्र एक अहोरात्रि में जितनी गति करता है उसके ६७ भाग करें। अब चन्द्र और कोइ भी नक्षत्र इन ६७ भाग में से कितने भाग तक साथ गति करते हैं, यह तय करें।

१) अभिजित नक्षत्र $\frac{२१}{६७}$ समय = **९ मुहूर्त** $\frac{२१}{६७}$ अंश के साथ गति करते हुए आगे बढ़ेगा।

२) बाकी के अमुक **६ नक्षत्र अर्धक्षेत्री हैं,** इसलिए $\frac{३३}{६७}$ $\frac{१}{२}$ काल चन्द्र के साथ = **१५ मुहूर्त** साथ रहेंगे।

३) बाकी के **अमुक ६ नक्षत्र सार्धक्षेत्री हैं,** इसलिए $\frac{१००}{६७}$ $\frac{१}{२}$ काल चन्द्र के साथ = **४५ मुहूर्त** साथ रहेंगे।

४) बाकी के **१५ नक्षत्र समक्षेत्री हैं,** इसलिए $\frac{६७}{६७}$ काल चन्द्र के साथ = **३० मुहूर्त** साथ रहेंगे ।

म-ण्ड-ल नं.	नक्षत्र का नाम	वर्तमान मान्यतानुसार राशियों की रचना	नक्षत्रों के प्रकार	चन्द्र के साथ भोग-भ्रमण का काल		सूर्य के साथ भोग-भ्रमण का काल	
				मुहूर्त में	अंश में	अंश में	दिवस में
१	अभिजित	मकर	–	९मु+$\frac{२७}{६७}$	$\frac{२१}{६७}$	$\frac{२१}{५}$	४दि, ६मुहूर्त
१	श्रवण	मकर	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}$=१	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	धनिष्ठा	मकर	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}$=१	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	शतभिषा	कुम्भ	अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}$=$\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
१	पू.भाद्रपदा	कुम्भ	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}$=१	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त

१	उ.भाद्रपदा	मीन	सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{२}$	२०दि, ३ मुहूर्त
१	रेवती		समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	अश्विनी	मेष	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	भरणी		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
३	कृत्तिका	वृषभ	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
४	रोहिणी		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{१०}$	२०दि, ३ मुहूर्त
८	मृगशीर्ष	मिथुन	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि,१२ मुहूर्त
८	आर्द्रा		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
२	पुनर्वसु		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{१०}$	२०दि, ३ मुहूर्त
८	पुष्य	कर्क	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
८	आश्लेषा		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
२	मघा	सिंह	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	पू.फाल्गुनी		समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
१	उ.फाल्गुनी		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{१०}$	२०दि, ३ मुहूर्त
८	हस्त	कन्या	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
४	चित्रा		समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त

१	स्वाति	तुला	अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
५	विशाखा		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{१०}$	२०दि, ३ मुहूर्त
६	अनुराधा	वृश्चिक	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
७	ज्येष्ठा		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त	$\frac{३३}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{३३}{५}$ $\frac{१}{१०}$	६दि, २१ मुहूर्त
८	मूल	धन	समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
८	पूर्वाषाढ़ा		समक्षेत्री	३० मुहूर्त	$\frac{६७}{६७}=१$	$\frac{६७}{५}$	१३दि, १२मुहूर्त
८	उत्तराषाढ़ा	मकर	सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त	$\frac{१००}{६७}=\frac{१}{२}$	$\frac{१००}{५}$ $\frac{१}{१०}$	२०दि, ३ मुहूर्त
	(अन्य चन्द्र के परिवार की)			$८१९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त	$२७\frac{२१}{६७}$		३६६ दिवस

प्रश्न : सभी नक्षत्रों के विमान १ गाउ के हैं, भिन्न-भिन्न मण्डल में होने पर भी प्रत्येक नक्षत्र $५९\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्त में अपना-अपना मण्डल पूर्ण करते हैं, अर्थात् उनकी कोणीय गति भी समान है। इस प्रकार समान कोणीय गति, समान आकार के विमानों वाले नक्षत्रों का चन्द्र के साथ होने वाले योगकाल में भेद क्यों है? इनमें समक्षेत्री, सार्धक्षेत्री और अर्धक्षेत्री ऐसे भेद क्यों हैं? सभी एक ही समान काल का योग क्यों नहीं करते?

उत्तर : यह भेद उन नक्षत्रों के आधिपत्य क्षेत्र की भिन्नता के कारण होता है। प्रत्येक की समान गति, और विमानों का आकार भी समान होने पर भी आधिपत्य क्षेत्र भिन्न होने से (छोटा-बड़ा) होने से

चन्द्र के साथ होने वाले योग का काल भिन्न-भिन्न होता है, इसलिए समक्षेत्री आदि भेद होते हैं।

सभी नक्षत्रों का आधिपत्य क्षेत्र दो भेद वाला है:

१) उत्तर-दक्षिण : ५१० यो. या उससे साधिक

२) पूर्व-पश्चिम : अनिश्चित (हजारों योजन प्रमाण)

● उत्तर-दक्षिण के ५१० यो. के आधिपत्य क्षेत्र के कारण चन्द्र के साथ नक्षत्र का उत्तराभिमुख, दक्षिणाभिमुख और प्रमर्द ऐसे तीन प्रकार से योग होता है ।

● पूर्व-पश्चिम आधिपत्य क्षेत्र, नक्षत्र की लम्बाई चौड़ाई पर भी आधार रखता है। अर्थात् जो नक्षत्र उत्तर-दक्षिण अधिक फैला हुआ होने के बावजूद पूर्व-पश्चिम कम फैला हुआ हो, उसका चन्द्र के साथ भोग काल अल्प होता है।

● आगे-पीछे के नक्षत्रों की सीमा निकट हो तो उसका आधिपत्य क्षेत्र ज्यादा कम होगा। जैसे, **रेवती नक्षत्र** जो ३२ तारों के परिवार वाला है, यह उत्तर-दक्षिण अधिक फैला होने पर भी, पूर्व-पश्चिम आधिपत्य का विस्तार अल्प होने के कारण इसका चन्द्र के साथ भोग-भ्रमण का काल ३० मुहूर्त है, जबकि उत्तर भाद्रपदा में २ तारे होने पर भी पूर्व भाद्रपदा से जरा सा अधिक अन्तर होने के कारण चन्द्र के साथ योगकाल ४५ मुहूर्त का है। या फिर, सभी नक्षत्र पूर्व से पश्चिम तक परस्पर भिन्न-भिन्न अन्तर रखते हुए अवस्थित हैं और उत्तर-दक्षिण में ५१० यो. तक आधिपत्य रखते हैं। इसलिए वहाँ से गुजरते चन्द्र के साथ उनका योग होता है ।

पूर्वविदित ३ योग अब समझ आते हैं।

आकृति : २७ **चन्द्र और नक्षत्रों के ३ प्रकार के योग**

१) उत्तराभिमुख योग

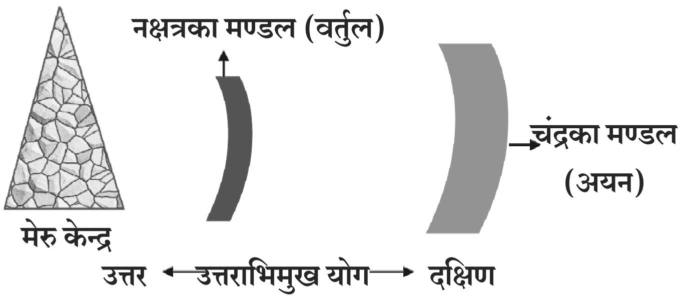

१) उत्तराभिमुख योग : नक्षत्र चन्द्र के उत्तर (अन्दर की ओर) हो तब, अर्थात् ‍न्द्र का मण्डल नक्षत्र के मण्डल के बाहर की ओर (दक्षिणी ओर) हो तब।

२) दक्षिणाभिमुख योग

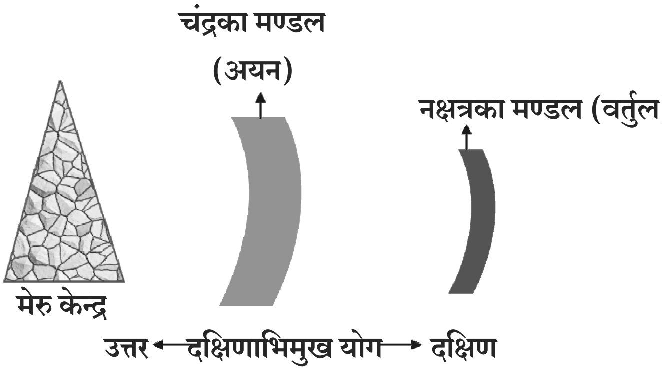

२) दक्षिणाभिमुख योग : नक्षत्र चन्द्र के दक्षिण (बाहर की ओर) हो तब, अर्थात् चन्द्र का मण्डल नक्षत्र के मण्डल के अन्दर की ओर (उत्तरी ओर) हो तब ।

३) प्रमर्द योग :

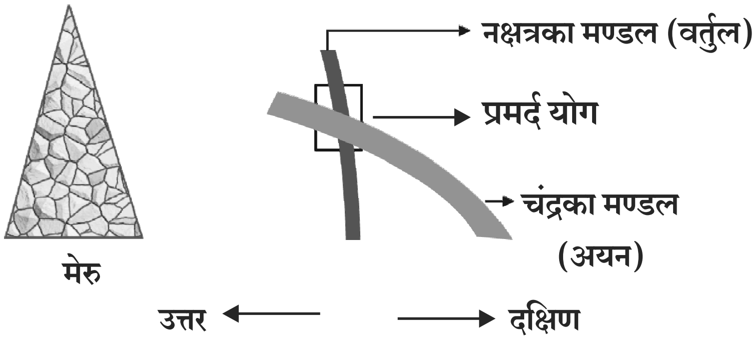

३) प्रमर्द योग : नक्षत्र के वर्तुल के ठीक नीचे से चन्द्र अयन गुजरे तब।

अब प्रत्येक नक्षत्र का चन्द्र के साथ उपरोक्त तीन में से किस प्रकार के योग होते हैं, यह बताया है। मण्डल प्रकरण गाथा ८६ की टीका :

[1]अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये द्वादशनक्षत्राणि सर्वाभ्यन्तरमंडलस्थानि चंद्रस्योत्तरेणोत्तरस्यां सदा योगं युजन्ति। अष्टौ नक्षत्राणि सर्वबाह्यमंडलस्थानि चंद्रस्य दक्षिणस्यां दिशि व्यवस्थितानि सदा योगं युञ्जन्ति। सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्ये नक्षत्रमंडले त्यक्त्वा शेषाणि षण्मध्यमंडलस्थान्यष्टौनक्षत्राणि कदाचिदुत्तर–योगीनि कदाचिद्दिक्षणयोगीनि कदाचित्प्रमर्दयोगीन्यपि।

२८ नक्षत्रों में से सर्वअभ्यन्तर मण्डल के १२ नक्षत्रों का उत्तराभिमुख योग ही होता है। सर्वबाह्य मण्डल के ८ नक्षत्रों का दक्षिणाभिमुख योग होता है। बाकी के २ से ७ मण्डल के ८ नक्षत्रों का ३ प्रकार का योग जानने में आता है। लोकप्रकाश में तो ७वें मण्डल में स्थित ज्येष्ठा के ३ प्रकार के योग न कहते

---

१. इसके उपरान्त सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र-४४ में भी इस प्रकार की बात की है, किन्तु उसमें सामान्य मतान्तर है ।

हुए प्रमर्द योग ही कहा है। उपरान्त ८वें मण्डल में स्थित पूर्वाषाढ़ा–उत्तराषाढ़ा के २–२ तारों का दक्षिणाभिमुख योग होता है और पूर्वाषाढ़ा–उत्तराषाढ़ा के २–२ तारों का प्रमर्द योग होता है, ऐसा बताया गया है।

आकृति : २८

युग की शुरूआत : श्रा. व. १ के आकाश में सूर्य, चन्द्र, पुष्य, अभिजित आदि की स्थिति

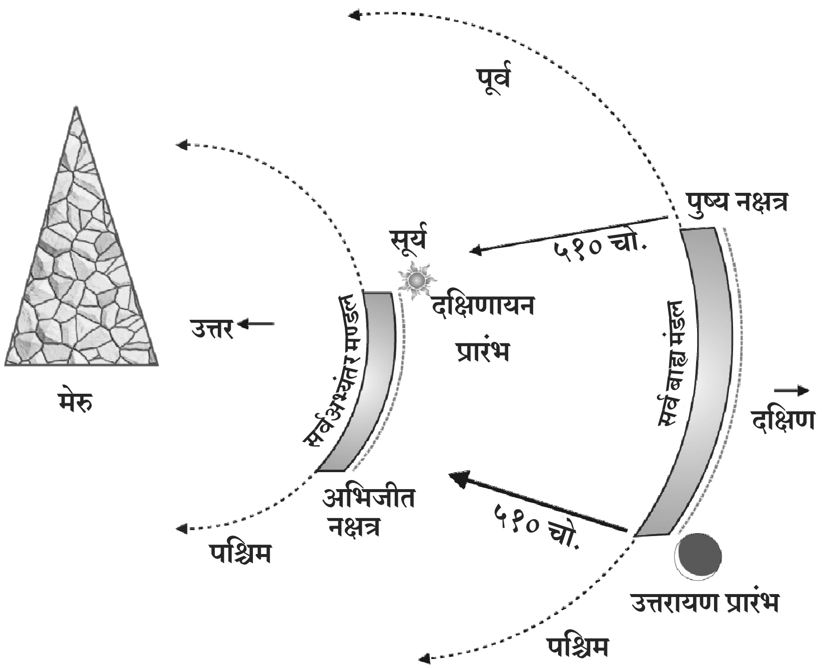

नोट : **१) चन्द्र से पुष्य = लगभग १२ घण्टों में सूर्य द्वारा तय (पार) होता हजारों योजन का अन्तर,**

२) सूर्य से अभिजित = लगभग १२ घण्टों में सूर्य द्वारा तय होता हजारों योजन का अन्तर,

३) ●...अभिजित = ५१० यो.

४) क.. पुष्य = ५१० यो.

इसका शब्दार्थ तो स्पष्ट है, किन्तु भावार्थ समझे बिना पदार्थ का बोध होना असम्भव है। इसलिए सर्वप्रथम चन्द्र आदि के अयनों की जानकारी में युग का शब्दार्थ और उसकी शुरूआत समझनी जरूरी है ।

युग = काल का माप = ५ वर्ष का समूह। इसकी विशेष जानकारी बाद में बताई जाएगी, किन्तु युग की शुरूआत श्रा. व. १ (शास्त्रीय) अर्थात् आषाढ़ वदी १ से मापी जाती है ।

उक्तं हि–सावणबहुलपडिवए, बालवकरणे अभीइनक्खत्ते सव्वत्थ पढम समए, जुगस्स आइं विआणाहि। सर्वत्रेति भरतैरावतविदेहेषु भाव्यम् अवसर्पिण्यां षण्णामरकाणाम् अप्यादिरत्रैव ।

उपरान्त, लोकप्रकाश में बताया है :

चंद्रोत्तरायणारम्भो युगादिसमये भवेत्।
प्रागुत्तरायणं पश्चाद्याम्यायनमिति क्रमः।। ४६६ ।। सर्ग–२०
प्रवृत्तिः स्याद्यतो ज्योतिश्चक्रचारैकमूलयोः।
सूर्ययाम्यायनशीतांशूत्तरायणयोः किल ।। ४६७ ।। सर्ग–२०

अर्थात् श्रावण वदी १ के बालव नामक करण में भरत–ऐरवत में सूर्योदय के प्रथम समय से युग की शुरूआत होती है, इसके साथ–साथ चन्द्र का उत्तरायण और सूर्य का दक्षिणायन शुरू होता है । अर्थात् चन्द्र सर्वबाह्य मण्डल में हो, बाद में उसका उत्तरायण शुरू होता है, तब युग की शुरूआत होती है, और सर्वबाह्य मण्डल में स्थित चन्द्र का सर्वअभ्यन्तर मण्डल में स्थित अभिजित के साथ योग होता है, और सर्वअभ्यन्तर मण्डल में स्थित सूर्य का दक्षिणायन उसी समय शुरू होने से सर्वअभ्यन्तर मण्डल में स्थित सूर्य का सर्वबाह्य मण्डल में स्थित पुष्य के साथ योग होता है ।

इस प्रकार सूर्य और अभिजित नक्षत्र दोनों एक ही प्रथम (सर्वअभ्यन्तर) मण्डल में तथा चन्द्र और पुष्य दोनों एक ही सर्वबाह्य मण्डल में होने पर भी उनका परस्पर पूर्व–पश्चिम अन्तर हजारों योजन का है। जबकि पहले मण्डल में स्थित सूर्य और ८वें मण्डल में स्थित पुष्य के बीच मात्र ५१० यो. तथा ८वें मण्डल में स्थित चन्द्र और पहले मण्डल में स्थित अभिजित के बीच

५१० यो. का ही अन्तर है। इसलिए उनका योग युक्तिसंगत है। अतः मण्डल की भिन्नता योग हेतु बाधक हो, ऐसा नहीं है। किन्तु सूर्य या चन्द्र से निकट स्थित नक्षत्रों के साथ ही उनका योग होता है। उपरान्त प्रत्येक नक्षत्र के बीच पूर्व–पश्चिम अन्तर हजारों योजन का तो जघन्य से बताया है, इसलिए कभी प्रथम मण्डल में किसी के साथ योग करके चन्द्र–सूर्य सीधे अन्य कोई भी मण्डल में स्थित नक्षत्र के साथ योग कर सकते हैं ।

आकृति २९

युग की शुरूआत में (श्रा. व. १) सर्वाभ्यन्तर मण्डल में सूर्य, सर्वबाह्य मण्डल में चन्द्र स्थित हैं,
उस समय भिन्न मण्डल में रहे नक्षत्रों का आयोजन (Setting):
(समझने की सरलता हेतु आकृति सीधी रेखा में दी गई है)

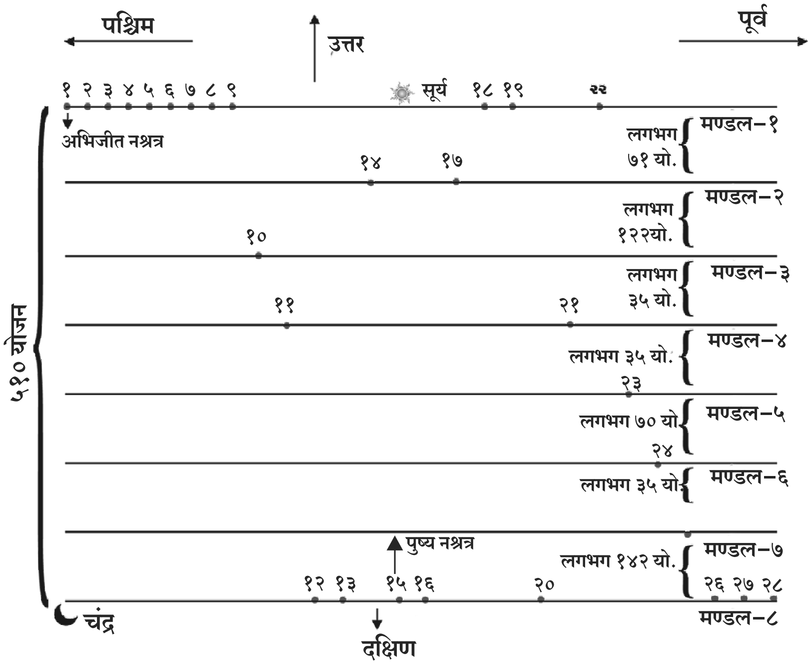

चित्र की समझ:

१ ● –ह्न– – ● २ या परस्पर कोई भी अनन्तर नक्षत्र – हजारों योजन (पूर्व–पश्चिम) अन्तर :

(१) १ से २८ नम्बर = अभिजित से उत्तराषाढ़ा तक के नक्षत्र,

(२) सूर्य तथा १५वें पुष्य नक्षत्र के बीच पूर्व–पश्चिम अन्तर नहीं,
उत्तर–दक्षिण = ५१० यो. अन्तर है।

(३) जबकि सूर्य और १४वें नक्षत्र के बीच पूर्व–पश्चिम अन्तर–हजारों योजन,
उत्तर–दक्षिण अन्तर = ७१ योजन है,
इसलिए पुष्य के साथ सूर्य का योग
अधिक सुसंगत है।

(४) चन्द्र तथा १ (अभिजित नक्षत्र) के बीच पूर्व–पश्चिम अन्तर नहीं,
उत्तर–दक्षिण ५१० यो. अन्तर है।

युग की शुरूआत के बाद इस प्रकार, १३ $\frac{१}{२}$ दिन के आस–पास चन्द्र का उत्तरायण पूर्ण होता है, अतः सर्वप्रथम अभिजित के ९ मु. (२७)/६७= लगभग ७ घण्टे १२ मिनिट का समय पूर्ण होने के बाद श्रवण–धनिष्ठा नक्षत्र क्रमशः ३०–३० मु. के लिए चन्द्र के साथ योग करेंगे। प्रथम मण्डल पूर्ण करने में चन्द्र को साधिक ६२ मु. होता है, और उपरोक्त नक्षत्रों का संयुक्त काल कुछ कम ७० मु. का होता है, इसलिए चन्द्र के बाह्य से प्रथम मण्डल में या उत्तरायण के प्रथम मण्डल में अभिजित–श्रवण के साथ का योग पूर्ण होगा, और धनिष्ठा का बहुधा भाग भी पूर्ण होगा। लगभग ७ मुहूर्त का धनिष्ठा का योग चन्द्र के उत्तरायण के दूसरे मण्डल में होगा उसके बाद के शतभिषा और पूर्व भाद्रपद के कुल ४५ मुहूर्त भी चन्द्र के उत्तरायण के दूसरे मण्डल में होंगे, और उत्तर भाद्रपद के लगभग १० मुहूर्त भी उसी में होंगे। फिर उसके ३५ मुहूर्त, रेवती के लगभग २७ मु. तीसरे मण्डल में भोगे जाएँगे और चौथे मण्डल में रेवती के ३ और अश्विनी के ३० मु. भोगे जाएँगे ।

इस प्रकार सर्वअभ्यन्तर मण्डल में स्थित ९ नक्षत्रों का भोग जब चन्द्र बाह्य मण्डल में हो तभी होता है, अर्थात् उत्तराभिमुख योग ही होता है। इस प्रकार विचार करने से यह तर्कसंगत हो जाएगा। उसके बाद के ६ नक्षत्रों का भोग करते–करते चन्द्र का सर्वबाह्य मण्डल में स्थित पुष्य के साथ योग होगा। पुनः चन्द्र का दक्षिणायन शुरू हो जाने से चन्द्र दक्षिण की ओर जाएगा। आश्लेषा–मघा के ४५ मु. भोगते हुए चन्द्र के दक्षिणायन में दो मण्डल पूर्ण होंगे। इससे प्रथम मण्डल में स्थित पू. फाल्गुनी – उ. फाल्गुनी के साथ योग करते हुए चन्द्र दक्षिण की ओर (बाहर के मण्डल में) होगा, इसलिए उसका भी स्थाई उत्तराभिमुख योग होगा। इस प्रकार सूक्ष्म बुद्धि से तथा गणित से विचार करते हुए सभी नक्षत्रों का आकाश में स्थान और उन नक्षत्रों के योग में चन्द्र का स्थान और उनके योगो आदि को सुज्ञ लोग स्वयं जान लें। सूर्य के साथ के योग के सन्दर्भ में भी इसी प्रकार स्वयं जान लें। इस हेतु नीचे की आकृति उपयोगी रहेगी।

आकृति ३० : समझने की सरलता हेतु वर्तुल की जगह नक्षत्रों को सीधी रेखा में रखा गया है।

६२ २३/२२१ मु. = ४९ क. मी. ५९ से. मां पूर्ण होते चंद्रके मण्डलो में नक्षत्रका योग

(१) चंद्र का उत्तरायन का प्रथम साधिक ६ ७/८ मण्डल

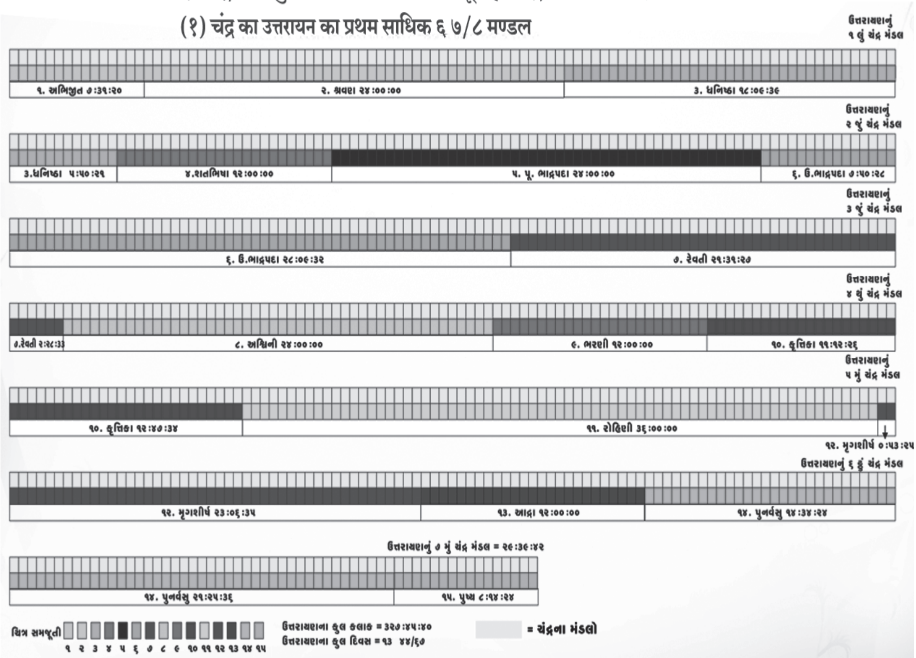

आकृति : ३०

६२ २३/२२१ मु. = ४९ क. मी. ५९ से. मां पूर्ण होते चंद्रके मण्डलो में नक्षत्रका योग
(१) चंद्र का दक्षिणायन का द्वितीय साधिक ६ १/२ मण्डल

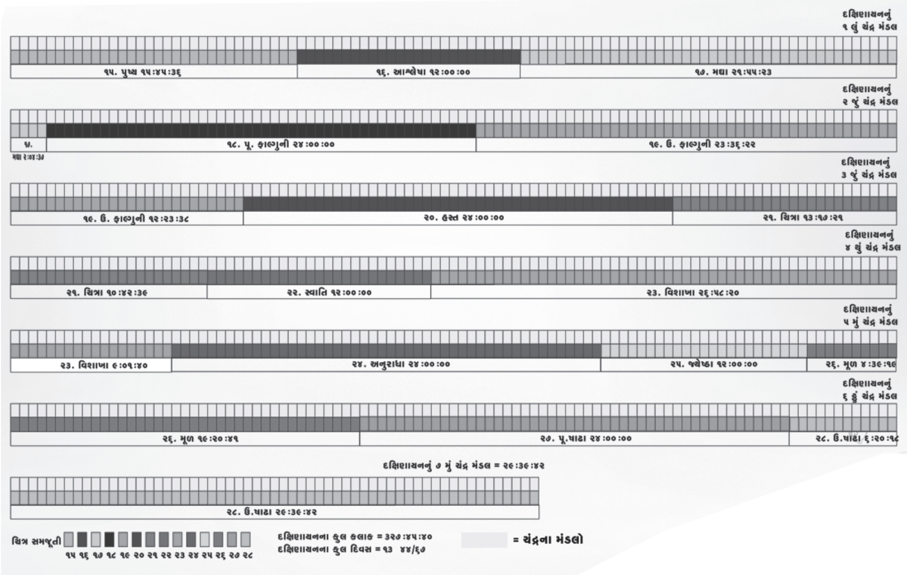

(d) सूर्य के साथ नक्षत्र–राशियों के योग

सूर्य अहोरात्र में जो दूरी पार करता है उसके = ५४,९०० कोणीय विभागों की धारणा करें। उपरान्त, सूर्य १ मुहूर्त में १८३० विभाग गति करता है, फ३० मुहूर्त = १८३०्र३० = ५४,९०० विभागों की गति होती है। नक्षत्र एक मुहूर्त में १८३५ विभाग गति करता है, अतः सूर्य से नक्षत्र की गति ५ विभाग अधिक होती है इसलिए सूर्य ५ विभाग पीछे रहता है, नक्षत्र प्रत्येक मुहूर्त में ५ विभाग आगे बढ़ता है।

अतः ३६६वें दिन सूर्य = ५ विभाग्र३० मुहूर्त्र३६६ दिन

= ५४,९०० विभाग पीछे रहता है, या नक्षत्र आगे बढ़ते हैं।

शास्त्रों में १ अहोरात्रि में सूर्य द्वारा पार होता अन्तर भी इतना ही (५४,९०० विभाग) बताया गया है। इस प्रकार सभी नक्षत्रों से व्याप्त प्रदेश या अर्धमण्डल = ५४,९०० विभाग ही माप होता है, जो सिद्ध होता है।

इस प्रकार फलितार्थ यह होगा कि सूर्य, वर्ष के प्रथम दिवस को जिस नक्षत्र के साथ होगा, वह नक्षत्र वर्ष के अन्तिम दिन सूर्य से ५४,९०० विभाग

आगे बढ़ चुका होगा। इसी बात का आधुनिक दृष्टिकोण से (घण्टे, मिनिट के माप से) मापें तो भी सिद्ध होता है ।

नोट : उपरोक्त विचारणा स्थूल गणित से प्राप्त की गई है, अतः थोड़े भेद की जगह है। सूर्य अहोरात्रि में आकाश में जितना अन्तर पार करता है, उतने प्रमाण क्षेत्र सूर्य ३६६ दिनों में नक्षत्र से पीछे पड़ता है। अर्थात् एक अहोरात्रि में २४ घण्टे का अन्तर पार होता है, अतः ३६६ दिनों में सूर्य २४ घण्टे पीछे पड़ता है, क्योंकि सूर्य लगभग ६० मुहूर्त = ४८ घण्टे में १ मण्डल पूर्ण करता है, जबकि नक्षत्र $५९\frac{३०७}{३६७}$ **मुहूर्त = ४७ घण्टे ५१ मिनिट ३६ सेकिण्ड फलगभग ४७ घण्टे ५२ मिनिट** में १ मण्डल पूर्ण करता है। इसलिए प्रत्येक मण्डल = २ दिन में सूर्य लगभग $८\frac{१}{२}$ मिनिट= ८ मिनिट २४ सेकिण्ड पीछे रहेगा। इसलिए ३६६वें दिन सूर्य लगभग साधिक २४ घण्टे (१४४० मिनिट) पीछे रहेगा। **इस प्रकार यह माप (२४ घण्टे)= एक अहोरात्रि में सूर्य जितनी गति करता है उतने माप से नक्षत्र से पीछे रहता है,** इसका ताला मिल जाता है। ३६६ दिनों में पीछे रहा सूर्य क्रमशः अर्धमण्डल में (२४ घण्टों में सूर्य द्वारा पार किया जाने वाला क्षेत्र) स्थित २८ नक्षत्रों के साथ योग करके उन्हें मुक्त करता है और **नए वर्ष में दूसरे सूर्य के २८ नक्षत्रों के साथ योग करके मुक्त करेगा। इस प्रकार युग की शुरूआत से १-३-५-७-९-११ आदि विषम संख्या के वर्ष में सूर्य अपने परिवार के नक्षत्रों (राशि) के साथ योग करता है, और २-४-६-८-१० अर्थात् सम संख्या के वर्ष में दूसरे सूर्य-चन्द्र के परिवारभूत २८ नक्षत्रों (राशियों) के साथ योग करता है ।** इस प्रकार सतत किसी न किसी नक्षत्र (राशि) के साथ सूर्य का योग रहेगा। इसकी विवरण तलिका पहले बताई ही है, उससे जान लें, बाकी **चन्द्र का नक्षत्रों के साथ योग** प्रकरण में बहुत कुछ बताया है, उसके अनुसार यहाँ भी स्वयं जान लें ।

आकृति : ३१

प्रचलित मान्यतानुसार नक्षत्रों तथा

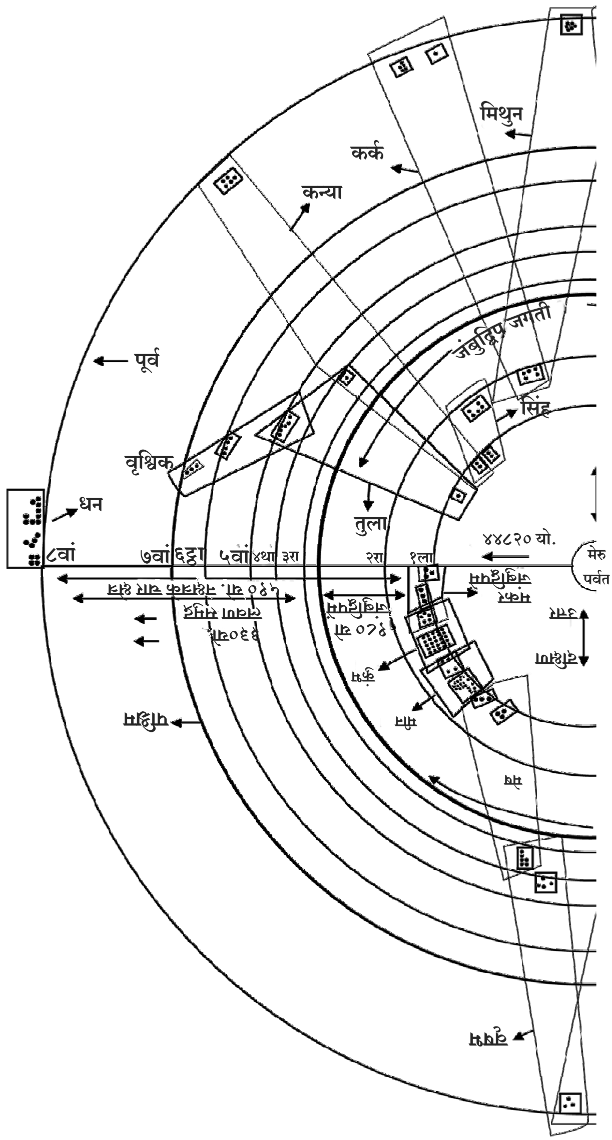

राशियों का आकाश में आयोजन

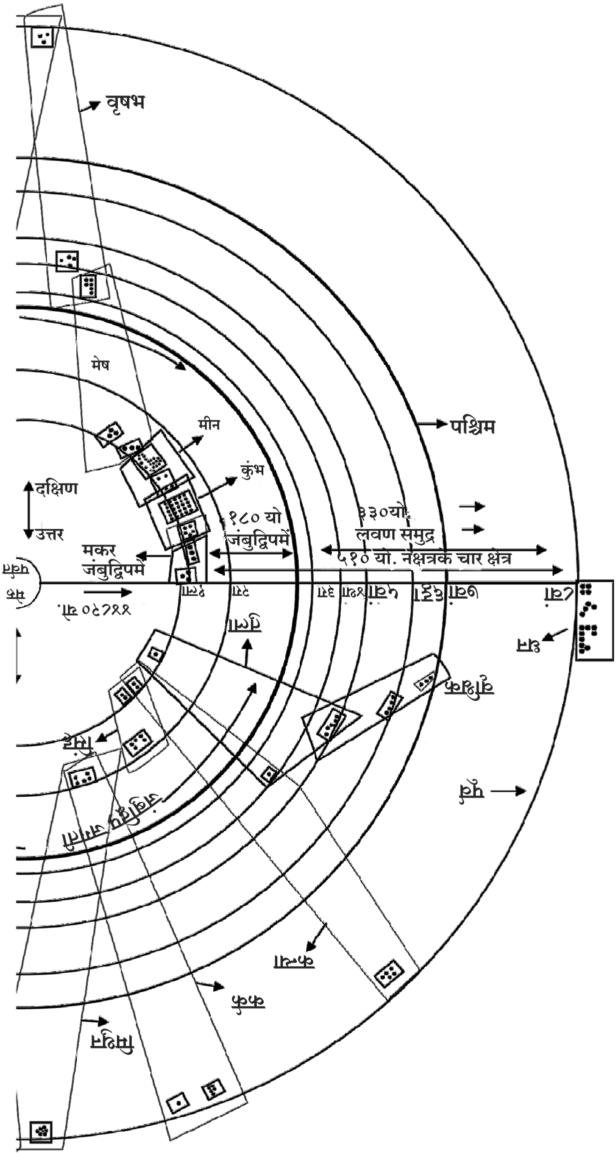

न.	नक्षत्र का नाम	नक्षत्र मण्डल की सं	चन्द्र मण्डल की सं.	तारों की सं.	आकार	रचना	नक्षत्रों के प्रकार	चन्द्र के साथ भोग भ्रमण का काल
१	अभिजित	१	१	३	गोशीर्षावली		–	९मु+$\frac{२७}{६७}$
२	श्रवण	१	१	३	कासार		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
३	धनिष्ठा	१	१	५	पक्षिपंजर		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
४	शतभिषा	१	१	१००	पुष्पमाला	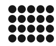	अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
५	पू.भाद्रपदा	१	१	२	अर्द्धवापी		समक्षेत्री	३० मुहूत
६	उ.भाद्रपदा	१	१	२	अर्द्धवापी		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त
७	रेवती	१	१	३२	नौकासंस्थान		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
८	अश्विनी	१	१	३	अश्वस्कन्ध		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
९	भरणी	१	१	३	भगसंस्थान		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
१०	कृत्तिका	३	६	६	क्षुरधारा	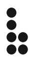	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
११	रोहिणी	४	७	५	शकटोद्धि		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूत
१२	मृगशीर्ष	८	१५	३	मृगशीर		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
१३	आर्द्रा	८	१५	९	रुधिरबिन्दु		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
१४	पुनर्वसु	२	३	५	तुला		सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त
१५	पुष्य	८	१५	३	वर्द्धमानक		समक्षेत्री	३० मुहूर्त
१६	आश्लेषा	८	१५	५	पताका		अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
१७	मघा	२	३	७	प्राकार		समक्षेत्री	३० मुहूर्त

१८	पूर्वा फाल्गुनी	१	१	२	अर्द्धपल्यंक	●●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
१९	उत्तरा फाल्गुनी	१	१	२	अर्द्धपल्यंक	●●	सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त
२०	हस्त	८	१५	५	हस्ततल	●●●●●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
२१	चित्रा	४	७	१	मुखमंडन सुवर्ण फूल	●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
२२	स्वाति	१	१	१	कीलक	●	अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
२३	विशाखा	५	८	५	पशुदामन	●●●●●	सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त
२४	अनुराधा	६	१०	४	एकावली	●●●●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
२५	ज्येष्ठा	७	११	३	गजदंत	●●●	अर्धक्षेत्री	१५ मुहूर्त
२६	मूल	८	१५	११	वृश्चिक पुच्छि	●●●●●●●●●●●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
२७	पूर्वाषाढ़ा	८	१५	४	गजविक्रम	●●●●	समक्षेत्री	३० मुहूर्त
२८	उत्तराषाढ़ा	८	१५	४	सिंहनीषदन	●●●●	सार्धक्षेत्री	४५ मुहूर्त
								८१९ $\frac{२७}{६७}$

यूरोपीय खगोल के मतानुसार नक्षत्रों/राशियों की व्यवस्था

● कोपरनिकस की सूर्यकेन्द्रित विचारणा के अमल में आने से वर्तमान यूरोपीय खगोलशास्त्रों द्वारा तय किए गए सिद्धान्त : (१) ब्रह्माण्ड के अंदर अनेक गैलेक्सियाँ (आकाशगंगाएँ) हैं।

● **उनमें से मन्दाकिनी आकाशगंगा में स्थित सूर्य के चारों ओर आसपास यह पृथ्वी सतत घूमती है ।** उपरान्त पृथ्वी के आसपास चन्द्र सतत घूमता है। हम (१) सूर्य को a = First Object, (२) पृथ्वी को b = Second Object, (३) चन्द्र को c = Third Object के रूप में पहचानेंगे। इस प्रकार a के आसपास b, और b के आसपास c सतत घूमता है। तिथि या नक्षत्र के साथ के योगों के लिए आधुनिक खगोलशास्त्र का गणित ऊपर लिखे र, ल और ल `लक्षशलीी पर ही अवलम्बित है, जिसकी बात आगे देखेंगे। विशेष रूप से यूरोपीय खगोलशास्त्र के अनुसार ये ३ objects के चारों ओर के अवकाश के काल्पनिक १२ भाग किए गए हैं, जिन्हें Zodiac कहते हैं; जिस पर से राशि का `लक्षशलीं प्रचलित बना। इसके अन्दर कुछ Fix Star रहते हैं, जिनकी संख्या ९०० से अधिक है। ये Fix Stars के समूह से कोन्स्टिलेशन – नक्षत्र बनते हैं, गतिशील होने पर भी हमसे बहुत दूर होने के कारण उनकी गति हजारों वर्षों में हमें कुछ ही होती हुई प्रतीत होती है, इसलिए उन्हें Fix Stars कहा गया। अब पृथ्वी सूर्य के आसपास फिरती है, अतः पृथ्वी के केन्द्र से रोज सूर्य का स्थान बदलता दिखेगा, इसलिए सूर्य के पीछे अलग–अलग Fix stars और Zodiac दिखेंगे। इस प्रकार सूर्य अमुक राशि–नक्षत्र में है, ऐसा कहा जाता है, और इसी प्रकार से चन्द्र, पृथ्वी के आसपास सतत घूमता है,

अतः **पृथ्वी से चन्द्र के पीछे के अवकाश में Fix stars / Zodiac** भी रोज बदलते दिखेंगे। इसे चन्द्र का राशि–नक्षत्र के साथ हुआ योग कहते हैं।

इसकी सूक्ष्म समझ नीचे दिए अनुसार है । [Page H, I, J जैन आगमिक गणित पर आधारित पंचांग प्रक्रिया से साभार]

सूर्य, चन्द्र और ग्रहों का राशि और नक्षत्रों के साथ योग

(a) यूरोपीय खगोलशास्त्र : चन्द्र पृथ्वी से सबसे नज़दीक का अवकाशीय पिण्ड है, और यह पृथ्वी का चक्कर (चारों ओर घूमना) लगाता है, इसलिए चन्द्र पृथ्वी का उपग्रह है। चन्द्र की तुलना में पृथ्वी का व्यास ३.६७ गुना है, अर्थात् पृथ्वी चन्द्र से ३.६७ गुना चौड़ी है। उपरान्त चन्द्र पृथ्वी के आस–पास गोलाकार के स्थान पर Eliptic (थोड़ा लम्बगोल) Orbit पर घूमता है। चन्द्र, पृथ्वी के आस–पास पश्चिम से पूर्व दिशा में तथा पृथ्वी के ऊपर के (+, –) १८ डिग्री अक्षांश से (+,–) २८ डिग्री अक्षांश तक गति करता है ।

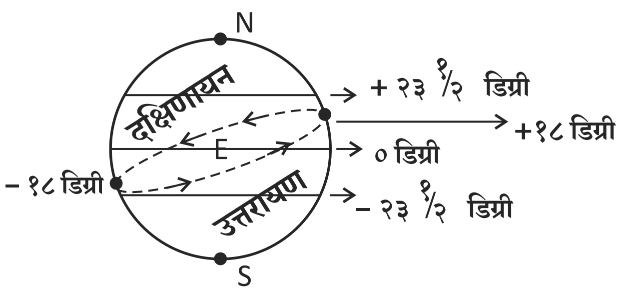

चन्द्र का गतिपथ
पृथ्वी के आसपास (+, –१८ डिग्री)

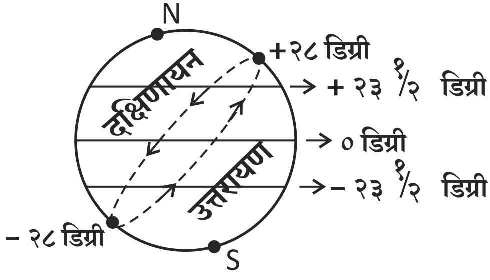

चन्द्र का गतिपथ
पृथ्वी के आसपास
(+, –२८ डिग्री)

चन्द्र को इस प्रकार पृथ्वी के आसपास एक चक्कर पूरा करने में २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनिट लगते हैं, जिसे सायडीरीयल मास (नक्षत्र मास) कहते हैं। जिससे चन्द्र का सभी राशियों और नक्षत्रों के साथ योग २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनिट में पूर्ण होता है और लगभग उसके आधे समय को (१३ दिन १५ घण्टे ५२ मिनिट) चन्द्र का उत्तरायण / दक्षिणायन कहते हैं। हाँ, पृथ्वी और सूर्य के परस्पर गुरुत्वाकर्षण के कारण सायडीरीयल महीना (नक्षत्र मास) २–४ घण्टे छोटा–बड़ा होता है, किन्तु आदर्श ओरिजिनल टाइम तो ऊपर बताए अनुसार ही जाना जाता है।

(यहाँ विशेष रूप से यह याद रखना है, कि राशि की व्यवस्था कहीं भी जैन आगम शास्त्रों या मूल हिन्दू शास्त्रों में नहीं थी, राशि की व्यवस्था पश्चिम के विद्वानों द्वारा दिया गया कॉन्सेप्ट है।) वे मानते हैं कि राशि = आकाश का निश्चित खण्ड। हमारी पृथ्वी के आस–पास के अखण्ड आकाश के १२ भाग की कल्पना करते हुए १२ राशियों का अस्तित्व उत्पन्न होता है, उपरान्त वह स्थिर है। उपरान्त नक्षत्र = तारों का समूह, निश्चित नक्षत्र निश्चित आकाशखण्ड में आयोजित हैं, इसलिए उन नक्षत्रों के समूह से राशि बनती हैं ऐसी मान्यता है; उपरान्त उस नक्षत्र के नाम से पहचाने जाने वाले तारे हमसे हजारों प्रकाशवर्ष दूर हैं, इसलिए गतिशील होने पर भी हमें स्थिर लगते हैं।

इस प्रकार साधिक २७ दिनों में पृथ्वी के आसपास घूमता चन्द्र इन सभी राशियों में से (नक्षत्रों में से) गुजरता हुआ हमें लगता है। इसे चन्द्र का राशि–नक्षत्र के साथ योग कहते हैं। **देखिए चित्र–१**

इसी प्रकार पृथ्वी का सूर्य के आसपास होने वाला भ्रमण ३६५$\frac{१}{४}$ दिन का है। इसलिए उस दौरान सूर्य भी पृथ्वी से भिन्न–भिन्न राशि में जाना जाता है और राशि/नक्षत्र का भोग पूर्ण करता है। **देखिए चित्र–२**

इसी तरह से जो भी ग्रह पृथ्वी के केन्द्र से आकाशखण्ड में जाने जाते हैं उसके अनुसार की राशि और नक्षत्र में वे ग्रह हैं, ऐसा जानें...। इस प्रकार यह राशि या नक्षत्र का (आकाशखण्ड का) सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के साथ योग हुआ कहलाता है।

भिन्न–भिन्न राशि और नक्षत्र के साथ चन्द्र के योग – २७d. ७h. ४३m.

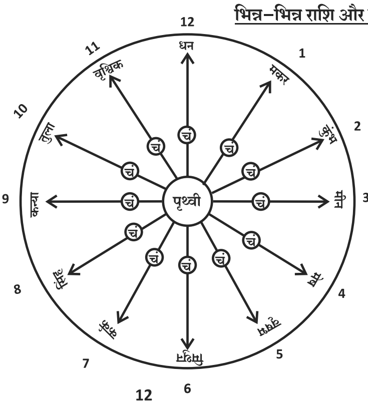

(१) कुल ३६० अंश × १२ राशि = ३० अंश अन्तर चन्द्र काटे तो १ राशि पार हुई

(२) कुल ३६० अंश × २७ नक्षत्र = १३.३३ अंश अन्तर चन्द्र काटे तो १ नक्षत्र पार हुआ

चित्र–१

भिन्न–भिन्न राशि और नक्षत्र के साथ सूर्य के योग

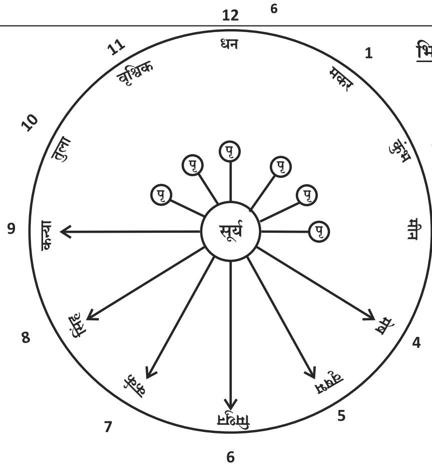

(१) कुल ३६० अंश × १२ राशि = ३० अंश अन्तर पृथ्वी काटे तो सूर्य की १ राशि पार हुई

चित्र–२

चित्र–३

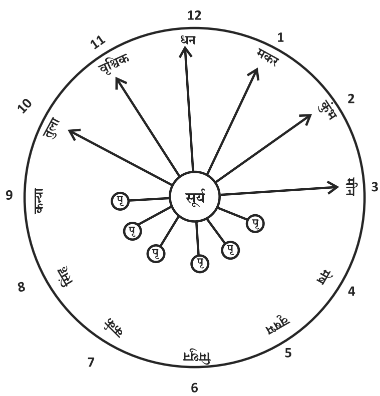

(२) कुल ३६० अंश × २७ नक्षत्र = १३.३३ अंश अन्तर पृथ्वी काटे तो सूर्य का १ नक्षत्र पार हुआ

सर्वज्ञमत की आधुनिक खगोल के साथ भेदाभेद की विचारणा

(१) सर्वज्ञके मत में नक्षत्रों की संख्या २८ है। आधुनिक खगोल के मत में भी नक्षत्रों की संख्या २८ है, किन्तु अभिजित को श्रवण और उत्तराषाढ़ा में समावेश करके वे नक्षत्रों की संख्या २७ बताते हैं।

(२) सर्वज्ञके मत में नक्षत्रका अधिपत्य क्षेत्र या नक्षत्रका विस्तार असमान माना गया है, जबकि आधुनिकखगोलशास्त्र सभी नक्षत्रोंके विस्तार को समान ही मानता हैं।

–जिनमतके अनुसार नक्षत्रके विस्तार के समक्षेत्री, अर्धक्षेत्री, सार्धक्षेत्री और शेष इस प्रकार चार विभाग किए गए हैं, आधुनिक खगोलशास्त्र के अनुसार नक्षत्र के विस्तार का मात्र समक्षेत्री ही भेद किया जाता है।

–आधुनिकखगोलशास्त्र के अनुसार प्रत्येक नक्षत्र १३°२०' का, अर्थात् सबका कुल क्षेत्र १३°२०'x२७ = ३६०° होता है जबकि जिनमत के अनुसार:

१. १५ समक्षेत्री नक्षत्र	= १५x१३°१०'३५''	=	१९५° १५०' ५२५''
२. ६ अर्धक्षेत्री नक्षत्र	= ६x६°३९'१७.५''	=	३६° २१०' १०५''
३. ६ सार्धक्षेत्री नक्षत्र	= ६x१९° ४५'५२.५''	=	११४° २७०' ३१५''
४. १ अभिजित नक्षत्र	= १x ४° १४'१५''	=	४° १४' १५''
	कुल	=	३६०° होता है।

(३) आधुनिक खगोलके अनुसार चन्द्रके साथ प्रत्येक नक्षत्रके योग का काल १३°२०' है, जो लगभग २२ से २७ घण्टे का होता है, और सूर्य के साथ योग का काल १३°२०' अर्थात् लगभग साधिक १३ दिन का होता है।

● जबकि जिनमतानुसार समक्षेत्री नक्षत्रका चन्द्रके साथ का योगकाल १३°१०'३५'' अर्थात् २४ घण्टे का होता है,

– अर्धक्षेत्री नक्षत्रका चन्द्रके साथ योगकाल ६°३९'१७.५'' अर्थात् १२ घण्टे का होता है,

– और सार्धक्षेत्री नक्षत्रका चन्द्रके साथ योगकाल १९°४५'५२.५'' अर्थात् ३६ घण्टे का होता है। सूर्य के साथ भी इसी प्रकार क्रमशः नक्षत्र का योग साधिक १३ दिन, साधिक ६ दिन और साधिक २० दिन का होता है।

(४) आधुनिक खगोल अभिजित को नहीं मानता और उसकी डिग्री को सभी नक्षत्रों में समान भाग में बाँट देता है, फिर भी उत्तराषाढ़ा और श्रवण के अन्दर हमने अभिजित को समाहित किया, ऐसा ही प्रतिपादन होता है। जबकि जिनमतानुसार चन्द्र के साथ अभिजित ४°१४'१५'' अर्थात् लगभग ७ घण्टे ३१ मिनिट जितने समय रहता है और सूर्य के साथ साधिक ४ दिन रहता है ।

(५) चन्द्र के साथ हुए नक्षत्र के योगों से नक्षत्र मास बनता है, **जिसका माप शास्त्रीय मत में २७–२१/६७ दिन = २७ दिन ७ घण्टे साधिक ३१ मिनिट = २७.३१३ दिन का दिखाया गया है, जबकि आधुनिक खगोलशास्त्र के अनुसार यह माप २७.३२१६६१ = २७ दिन ७ घण्टे साधिक ४३ मिनिट बताया है। अर्थात् दोनों के बीच मात्र १२ मिनिट का ही फर्क है ।** इसका निश्चित संस्कार जानने के लिए देखें इस पुस्तक का पेज न. **७४**

(६) सूर्य के साथ हुए नक्षत्र के योगों से आधुनिक खगोल के अनुसार Sidereal year अर्थात् **सायनवर्ष का निर्माण होता है, जिसका माप ३६५.२५६३६४ दिन का बताया गया है ।** उपरान्त यह माप प्रत्येक वर्ष सामान्य रूप से बदलता भी है। जिनमतानुसार **नक्षत्र और सूर्य के योग का कुल माप ३६६ दिन बताया है, अतः हर वर्ष अंदाजित १८ घण्टे का भेद होता है ।**

(७) जिनमत के अनुसार **सूर्य के उत्तरायण–दक्षिणायन का माप ३६६ दिन है, जबकि वर्तमान खगोलशास्त्र के अनुसार यही माप ३६५.२४२१९ (निरयन वर्ष) दिन का है ।** अर्थात् जिनमतानुसार सूर्यका नक्षत्रके साथ का भोगकाल और सूर्य का उत्तरायण–दक्षिणायन दोनों का समय ३६६ दिन बताया है, जो आधुनिक खगोलशास्त्रके अनुसार क्रमशः ३६५.२५६३६४

(सायन–Sidereal year) और ३६५.२४२१९ (निरयन – Tropical year) होता है, और इन्हीं दो सायन–निरयन वर्ष के माप के भेद से सायन–निरयन दो पद्धतियाँ अस्तित्व में आई हैं। यहाँ याद रहे, कि ३६५.२५ वाली वैल्यू को निरयन और ३६५.२४ वाली वैल्यू को सायन भी कहा है। यहाँ मात्र परिभाषा का भेद है, तत्त्व तो समान ही है।

(८) इसके अलावा जिनमत के अनुसार सूर्य के १ वर्ष में ३६६ मण्डल हैं, उसके चार क्षेत्र ५१० योजन में फैले हुए हैं। चन्द्रका एक नक्षत्रमास साधिक २७ मण्डल है, और उसके चारक्षेत्र भी ५१० योजन में फैले हुए हैं। यह माप भी आधुनिक खगोल के साथ लगभग मिलता है।

इस प्रकार **मूलभूत सिद्धान्तों में दोनों पक्ष कहीं समान कहीं असमान होने के बावजूद भी आंकड़ों के सन्दर्भ में अमुक भेद आने के कारण दोनों परम्पराएँ एक–दूसरे से काफी अलग दिखाई देती हैं।**

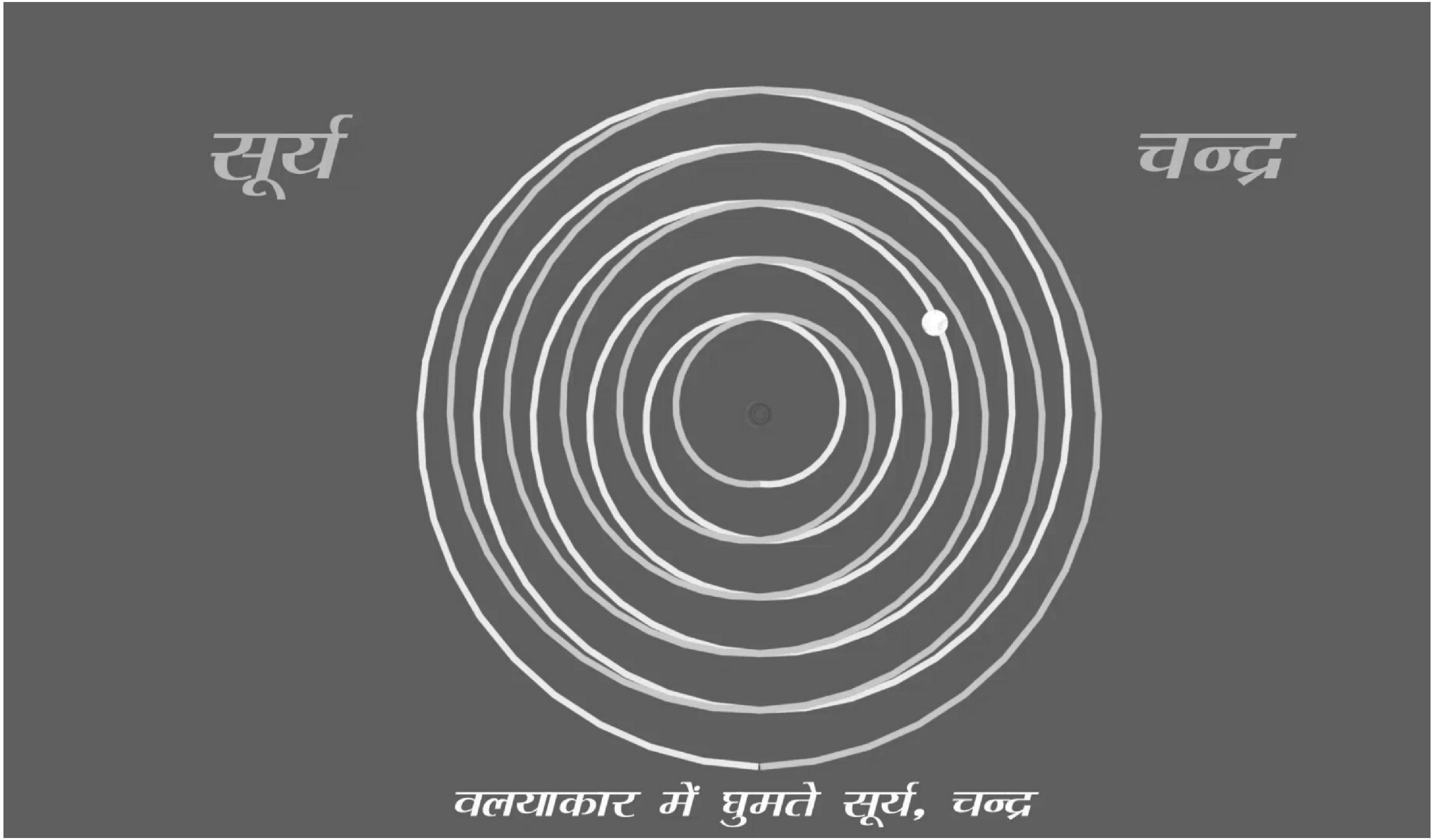

चित्र –५

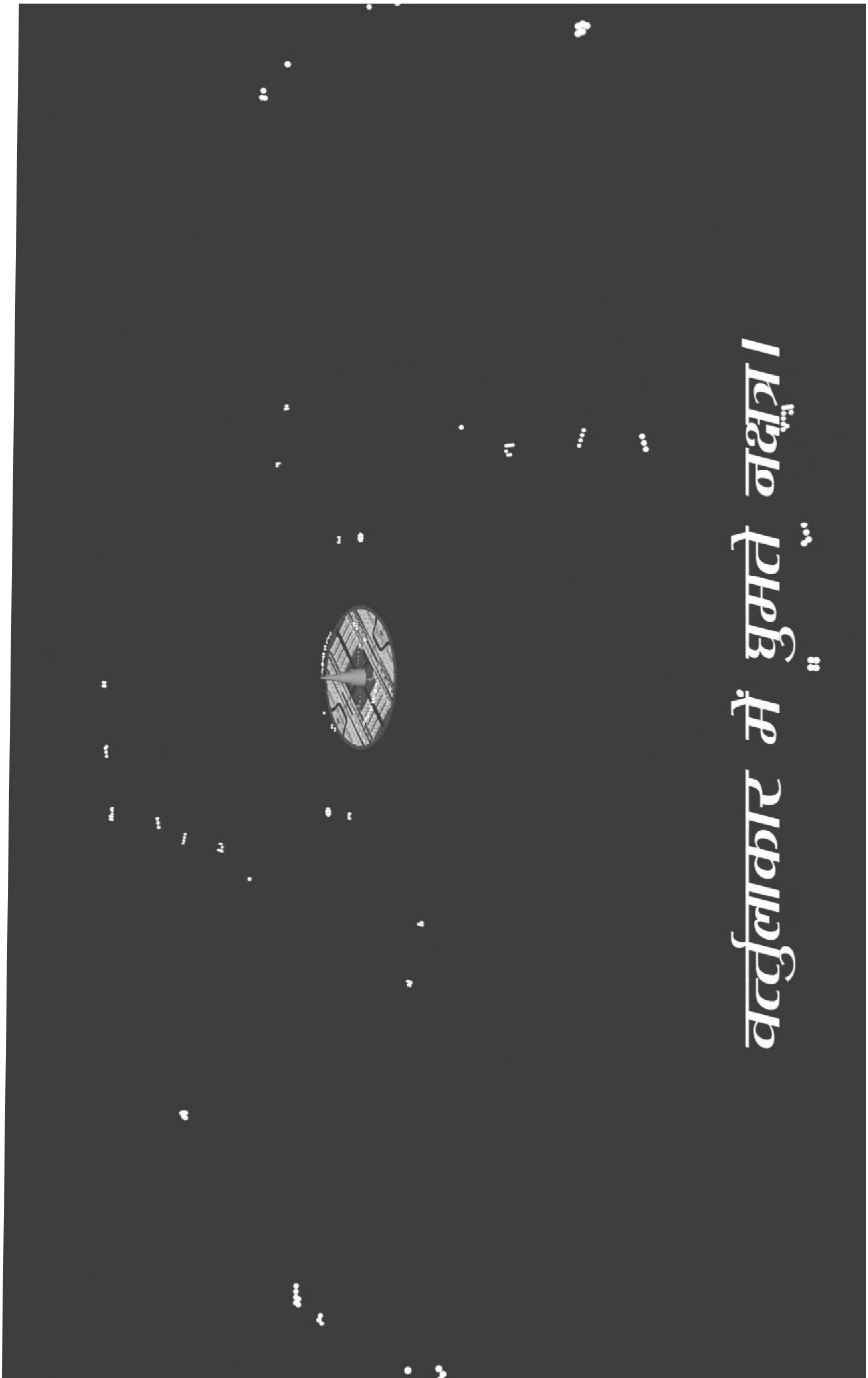

चित्र – ७

शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार और प्रत्यक्ष के साथ मेल साधने से पंचांग बनता है ?

पूर्व में बताया उसके अनुसार जिनमत और यूरोपीय खगोलमत में कहीं परस्पर भेद है, फिर भी दोनों समानता भी रखते हैं। प्रश्न यह है कि दोनों में से एक को भी गौण नहीं कर सकते, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्तों के साथ समझौता करें, तो सम्यक्त्व मलिन होता है, और यूरोपीय खगोलमत में निर्दिष्ट अवकाशी मान्यता से अलग चले तो प्रत्यक्ष को बाधा आती है, इसलिए क्या किया जाए? किसे अधिक प्राथमिकता दी जाए यह समझ नहीं आता। शास्त्रपाठों को प्रायोरिटी देंगे तो प्रत्यक्ष आकाश के साथ बाधा आएगी, ऐसा लगता है और मात्र प्रत्यक्ष को पकड़ेंगे तो शास्त्रपाठ गौण हो जाएँगे, ऐसा लगता है। त्रैकालिक सत्य के प्ररूपक सर्वज्ञ भगवन्त प्रत्यक्षके साथ बाधा आए, ऐसी प्ररूपणा तो नहीं ही करेंगे। इसलिए यह मानना चाहिए कि प्रभुने जिस अर्थ में (जिस दृष्टिकोण से) ये पदार्थ दिखाए, उनका अर्थघटन करनेमें हम कहीं असफल रह रहे हैं। **यत् अभ्रान्तप्रत्यक्षं तत् सर्वज्ञस्य अनुमतं एव स्यात् तथा यत् सर्वज्ञस्य अनुमतं तत् अभ्रान्त प्रत्यक्षेण अवश्यं संवादि भवतीति न्यायेन।** किसी ऐसे सत्य तत्त्व तक पहुँचना है जहाँ सर्वज्ञ की वाणी और प्रत्यक्ष–दोनों संवादी हो जाएँ।

अब शान्ति से, गहराई से, सूक्ष्म बुद्धि से या मार्गानुसारी प्रज्ञा से विचार करें, तो सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ज्योतिषचक्र विषयवाले शास्त्रोंमें आनेवाली जानकारी को अपनी समझकी स्पष्टता हेतु दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) सैद्धान्तिक विषय (निश्चय), और (२) गाणितिक विषय (व्यवहार).

(१) सैद्धान्तिक विषयक (निश्चय) : जिसमें त्रैकालिक अबाधित सिद्धान्त की प्ररूपणा होती हो, जैसे

a) सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र मेरू के पास अयनमार्ग या वर्तुलमार्ग में घूमते हैं।

b) जम्बूद्वीप में ज्योतिषचक्र के पदार्थ दो की जोड़ी में हैं। (इस समग्र ज्योतिषचक्र के थोड़े भाग को ही यूरोपियन विद्वान गैलेक्सी मान रहे हैं।)

c) जम्बूद्वीप के आश्रय से ज्योतिषचक्र के आधे विभाग में १ चन्द्र, १ सूर्य, २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह, ६६९७५ कोडा–कोडी (करोड x करोड) तारे हैं।

d) सूर्य–चन्द्र की उत्तरायण–दक्षिणायन को सूचित करने वाली उत्तर–दक्षिण गति और नक्षत्रों के योगों को तथा अहोरात्रि को सूचित करने वाली पूर्व–पश्चिम गति इस प्रकार उभय प्रकार की गति है।

e) एक चन्द्र के परिवार के २८ नक्षत्र अर्धअवकाश को व्याप्त होकर रहे हुए हैं, उनका आधिपत्य क्षेत्र समान न होते हुए सम, अर्ध, सार्ध, और शेष – इस तरह ४ प्रकार का है। उपरान्त उनके अन्दर सूर्य, चन्द्र और ग्रह आते हैं, तब उस नक्षत्र के साथ उनका (सूर्य, चन्द्र और ग्रह का) योग होता है, ऐसा कहा जाता है, इत्यादि

(२) गाणितिक विषयक [१](व्यवहार) : सैद्धान्तिक तत्त्वों को तथा उनकी गहराई को अधिक अच्छे तरीके से शिष्य को (छद्मस्थको) समझाने हेतु उसकी प्रज्ञाको केन्द्र में रखते हुए सत्यसापेक्ष आंकड़ों में उन तत्त्वों का प्रतिपादन किया जाता है। कदाचित् ऐसा कह सकते हैं कि अतीन्द्रिय और अवकाशीय पदार्थों की जानकारी गणित की परिभाषा में अधिक अच्छे तरीके से समझाने हेतु सत्यसापेक्ष किन्तु व्यवहारिक (औपचारिक) कथन किया जाता है। जैसे,

a) मेरू के पास घूमते सूर्य–चन्द्र की प्रथम मण्डल में परिधि ३,१५,०८९ योजन है, तो प्रश्न होता है कि, अयनमार्ग की परिधि कैसे होगी? क्या उसकी कोई निश्चित त्रिज्या होगी? नहीं। फिर भी सिद्धान्त में छद्मस्थ शिष्य को कुछ स्पष्ट बोध प्राप्त हो, इस हेतु इस प्रकार से प्ररूपणा की गई है।

---

१. ववहरो विहु बलवं, जं वदेह केवली वि छउमत्थं ।
आहाकम्मं भुंजइ, सुयववहारं पमाणंतो ।।२२९।। પુષ્પમાલા

b) सूर्य तथा चन्द्र की उत्तर–दक्षिण गति के द्वारा क्रमशः १८३वें दिन और साधिक १३ दिन में तय होने वाला अन्तर ५१० योजन है, और पूर्व–पश्चिम गति तो परिधि को ३० मुहूर्त के साथ भाग देने से मिलती है। इस प्रकार अयनमार्ग में परिधि ही न हो तो पूर्व में दिखाए गए प्रश्न खड़े होते हैं, फिर भी व्यवहार से इस प्रकार का प्रतिपादन होता है।

c) सूर्य के कुल चार क्षेत्रों को सूर्य ३६६ दिन में पूर्ण करता है। चन्द्र २७–२१/६७ दिन में पूर्ण करता है। चन्द्रमास २९–३२/६२ मुहूर्त प्रमाण है।

d) नक्षत्र क्रमशः १५, ३०, ४५ मुहूर्त सूर्य–चन्द्र के साथ योग करते हैं, शेष नक्षत्र अभिजित ९–२१/६७ मुहूर्त चन्द्र–सूर्य के साथ योग करता है आदि। नक्षत्र मास का प्रमाण २७–२१/६७ = २७.३१३ दिन का दिखाया है।

e) पांच प्रकार के मासका माप – उनके परस्पर मेल का, समादि सांत आदि का प्रतिपादन...

अतः यहाँ यह तय होता है कि छद्मस्थ जीवों को समझाने हेतु केवलज्ञान में प्रतिभासित होनेवाले ज्ञान से कुछ अलग लेकीन लोकभोग्य पद्धत्ति से केवली प्ररूपणा करते हैं। उदा., सूर्य–चन्द्र के मण्डल निश्चय से न होने पर भी मण्डलके रूप में उनकी कल्पना, उनकी परिधि, उनकी (सूर्य–चन्द्र की) मुहूर्त गति, उनका प्रकाशक्षेत्र आदि का प्रतिपादन।

व्यवहारभाषासे होने वाला प्रतिपादन शास्त्रीय है, क्योंकि

१. दशवैकालिकसूत्रकी निर्युक्तिकी २७३वीं गाथा में सत्यभाषा के दस भेद बताए गए हैं:

जणवयसम्मयठवणा नामे रुवे पडुच्च सच्चे अ ।
ववहारभावजोगे दसमे ओवम्मसच्चे अ ।।

उपरान्त द्रव्य लोकप्रकाश के सर्ग–३ के ३१वें योगद्वार की गा. नं. १३६१ से १४०९ में विविध प्रकार की भाषा का वर्णन है। इसमें दस प्रकार

की सत्यभाषा में से एक प्रकार **व्यवहार सत्यभाषा** है, और असत्यअमृषा जो बारह भेद वाली है, उन **सभी भेदों को व्यवहार भाषा** माना गया है। सत्यभाषा मोक्षमार्गकी आराधक है और **व्यवहारभाषा मोक्षमार्गकी विराधक नहीं है। अतः कहा जा सकता है, कि केवली प्ररूपित ग्रन्थों में सत्य के भेद के तुल्य व्यवहार सत्यभाषा और केवली के बोलने योग्य व्यवहारभाषासे भी प्ररूपणा की जा सकती है।**

२. इसके उपरान्त १४ पूर्वधर पूज्यपाद भद्रबाहुस्वामीजी द्वारा संकलित कल्पसूत्र में माता त्रिशला को आए छठे स्वप्न – चन्द्र के वर्णन में चन्द्र के विशेषण के रूप में (समुद्द दगपूरगं) **जलधिवेलावर्धकम्** रखा है। जिनमतानुसार समुद्र में ज्वार–भाटे का कारण पाताल कलश हैं, फिर भी व्यवहार से ही यह विशेषण रखा गया होगा न?

३. कल्पसूत्र के मूलपाठ में १४ पूर्वधर पूज्यपाद भद्रबाहुस्वामीजी ने परमात्मा ऋषभदेव, प्रभु नेमिनाथ, प्रभु पार्श्वनाथ तथा प्रभु वर्धमानस्वामी के जन्म कल्याणक के वर्णन में सभी स्थानों पर:

'नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं'

लिखा है। किन्तु वास्तव में सभी तीर्थंकरों का गर्भकाल अलग–अलग है यह बात प्रसिद्ध ही है, तो क्या यह सूत्र व्यवहारभाषा का प्रतिपादन करता है, ऐसा नहीं लगता?

४. उपरान्त, सिद्धोंकी अवगाहना के विषयमें आवश्यकनिर्युक्ति ९७१, ९७२ और ९७३ की टीका देखने से मरूदेवी माता की अवगाहना जो साधिक ५०० धनुष्य दिखाई गई है, जो व्यवहारिक प्रतिपादन है, ऐसा सिद्ध होता है।

५. जिस प्रकार तिथि का क्षय–वृद्धि वास्तव में तो नहीं होती, फिर भी सूर्योदय को ध्यान में रखते हुए तिथि के क्षय–वृद्धि का व्यवहार होता है।

६. जिस प्रकार किसी भी तिथि की शुरूआत रात या दिन, किसी भी घड़ी से होती है, फिर भी लौकिकपंचागवाले सूर्योदय से सूर्योदय तक ही उन तिथियों का व्यवहार चलाते हैं।

सूर्यप्रज्ञप्ति, लोकप्रकाश, सूर्य–चन्द्रमण्डलविचार आदि ग्रन्थों में सूर्य और चन्द्र के मण्डल [1]अयनमार्गी होने के कारण एक ओर मण्डल का अभाव दिखाया होने के बावजूद [2]दूसरी ओर मण्डल की परिधि ३१५०८९ योजन बताई गई, उसके आधार पर सूर्य–चन्द्र की मुहूर्त गति दिखाई गई है, **क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि शास्त्रोंमें सैद्धान्तिक ज्ञान त्रैकालिक सत्यके आधार पर दिखाया है और गाणितिक ज्ञान लोकव्यवहारको केन्द्रमें रखते हुए स्थूल पद्धत्ति का दिखाया गया हो सकता है, इसलिए उसमें प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर सामान्य संस्कार करने में शास्त्रीयता कहीं भी खण्डित नहीं होती ।** अतः यह निश्चित होता है, कि सैद्धान्तिकदृष्टि से लौकिक और शास्त्रीय सिद्धान्तों में जहाँ भेद है, वहाँ **शास्त्रीय सिद्धान्त अधिक सूक्ष्म है, अतः उसका स्वीकार करें और गणित में जहाँ लौकिक और** शास्त्रीय गणित में भेद आता है, **वहाँ कष–छेद–ताप द्वारा उसकी सूक्ष्मता जाँच कर आवश्यक संस्कार करें ।** मुख्य रूप से (१) नक्षत्रों की संख्या, (२) नक्षत्रों का चन्द्र एवं सूर्य के साथ के योग सम्बन्धित (क्षेत्र एवं काल से सम्बन्धित) विचारणा, और (३) सायन–निरयन बिन्दु की सत्यता। इन तीन मुद्दों पर सैद्धान्तिक–गाणितिक दृष्टि से विचार कर लोकसंगत और शास्त्रसंगत मार्ग ढूंढकर उभयमान्य प्रतिपादन करना चाहिए ।

---

१. ता नो निच्छयरूवं, निप्फज्जइ मंडलं दिणयराणं, चंदाण वि एवं चिअ, निच्छयओ मंडलाभावो ।।७।। चंद्र सूर्यमंडल विचार ।।१५।। मंडल प्रकरण

२. तिन्नेव सयसहस्सा, पन्नरस हवंति जोअणसहस्सा ।
एगुणनउआ परिही, अब्भंतरमंडले तेसिं ।।१८।। मंडल प्रकरण

(१) नक्षत्रों की संख्या २८ है या २७-एक मीमांसा

नीचे दिए गए **सूर्यप्रज्ञप्ति** आदि लोकोत्तर ग्रन्थ, और लौकिक में **सूर्य सिद्धान्त की टीका** आदि ग्रन्थ, और आधुनिक **ध ओरायन** आदि ग्रन्थों के पाठों से सिद्ध होता है, कि प्राचीन काल में भारतवर्ष की परम्परा में भी २८ नक्षत्र ही थे। नक्षत्रों की संख्या २७ मानने का कारण या उन्हें साबित करने का कोई ठोस तर्क आज भी नहीं मिलता। मात्र गणित की सुविधा हेतु ही २७ संख्या की गई, यह साबित होता है। **वि. सं. १६५२ में विनयकुशलगणि रचित मण्डल प्रकरण की स्वोपज्ञ वृत्ति में ५वीं गाथा और उसकी टीका** में बताया है, कि एक चन्द्र के परिवार में २८ नक्षत्र होते हैं, जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र होने के कारण ५६ नक्षत्र होते हैं ।

'छप्पन्नं' पंतीओ, नक्खत्ताणं तु मणुअ लोगम्मि।
छावट्ठी छावट्ठी, होइ इक्किक्कियापंती।। ५ ।। तथाहि–किलास्मिन् जंबूद्वीपे दक्षिणतो–ऽर्द्धभागे एकस्य शशिनः परिवारभूतान्यभिजिदादीन्यष्टाविंशति–संख्याकानि नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि चारं चरन्ति ।

उपरान्त, **सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र–३२** में बताते है, कि अभिजित से लेकर उत्तराषाढ़ा तक के सभी नक्षत्र क्रमशः सूर्य–चन्द्र के साथ योग करते हैं, इस प्रकार अभिजित का समावेश करने से फलित होता है कि नक्षत्र २८ हैं।
वयं पुण एवं वदामो सव्वेवि णं णक्खत्ता अभिई आदीया उत्तरासाढा–पज्जवसाणा पण्णत्ता, तंजहा–अभिइ, सवणो जाव उत्तरासाढा।। (सू. ३२)
और सामने प्राचीन सनातन (वैदिक) परम्परा में भी २८ नक्षत्र ही स्वीकृत थे। प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्रामी **बाल गंगाधर तिलक** द्वारा वेद कब लिखे गए, उस पर हुए संशोधन प्रकाशित करने वाली **ध ओरायन** पुस्तक, जिस पर मुम्बई समाचार में रविवारीय कॉलम देनेवाले **प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जे. जे. रावल** की सरल प्रस्तुति है, उसके **पेज नं. ४८–४९ का ब्यौरा पढ़ते हुए अभिजित नक्षत्र और २८ की संख्या की पुष्टि होती है, जो निम्नानुसार है:**

નિવેદના વર્ષની પરિભાષામાં વરસના મધ્ય ભાગનો દિવસ, મધ્ય દિવસ, વિષુવન છે અને તેની પહેલાં ચાર દિવસ પહેલાં અભિજિત દિવસ આવે છે.

છ મહિનાના સત્રમાં ત્રણ અભિપ્લવ સલાહા છે. દરેક સલાહા છ દિવસનું હોય છે. માટે ત્રણ સલાહાના ૧૮ દિવસ થયા અને એક પ્રિસ્થ્ય સલાહા એટલે કુલ ૨૪ દિવસ. પછીના દિવસને અભિજિત દિવસ કહે છે, પછી ૩ દિવસ સ્વરસમન દિવસો હોય છે અને બીજા બે દિવસ અતિરાત્ર અને ચતુર્વિંશ દિવસ અને છેલ્લે વિષુવન અથવા સત્રનો મધ્યદિવસ. વિષુવન દિવસ એક અલગ જ દિવસ તરીકે રહે છે. અતિરાત્ર અને ચતુર્વિંશના બે દિવસો સત્રની શરૂઆત પહેલાંના ઉજવણીના દિવસો છે. આમ છ મહિનાનું સત્ર પૂર્ણ થાય છે. આમ અભિજિત દિવસ વિષુવન દિવસ પહેલનો ચોથો દિવસ હોય છે.

જો અભિજિત દિવસનું નામ અભિજિત નક્ષત્ર પરથી પડ્યું હોય તો, એટલે કે સૂર્ય અભિજિતમાં હોય તો, પછી વિષુવન દિવસ અથવા તો શરદસંપાતનો દિવસ અભિજિત દિવસ પછી ચાર દિવસે આવે. સૂર્ય દરરોજ ૧ અંશ ચાલે છે. માટે ચાર દિવસ પછી તે તેના માર્ગમાં બીજા ૪ અંશ ચાલે. ખગોળીય ગણતરી કરતાં માલૂમ પડે કે અદિતી કે પુનર્વસુ જ્યારે વસંતસંપાતબિન્દુએ હોય ત્યારે નિવેદ ધરાવાય તો આપણને તે જ પરિણામ મળે. સૂર્ય સિદ્ધાંતમાં પુનર્વસુનો લોન્જીટ્યૂડ ૯૩° છે, જ્યારે અભિજિતનો ૨૬૬°૪૦' છે. એટલે કે અભિજિત શરદસંપાત કરતા ૬° પાછળ છે. એટલે કે તે ૬° વિષુવનના લોંજીટ્યૂડથી પાછળ છે, જો આપણે વસંતસંપાતબિન્દુને પુનર્વસુ સાથે મળતો માનીએ તો (૨૬૭°-૯૩° = ૧૭૪° જે ૧૮૦° નથી) તેમાં છ ઉમેરીએ તો તે ૧૮૦° થાય.

જ્યારે વસંતસંપાત પુનર્વસુમાં હોય ત્યારે શરદસંપાતબિન્દુ પર કે તેની નજીકમાં કોઈ વિષુવન દિવસના આગમનની અગાઉથી જાહેરાત કરતું બીજું તેજસ્વી નક્ષત્ર નથી. તેથી આપણે સમજી શકીએ છીએ કે પ્રાચીનતમ સમયમાં જોકે અભિજિત નક્ષત્ર રવિમાર્ગથી ઘણું દૂર હોવા છતાં, શા માટે તેને જૂના નક્ષત્રની યાદી માં લેવામાં આવ્યું હતું. તે પ્રારંભિક નિવેદના કેલેન્ડરમાં વિષુવન દિવસના આગમનની અગાઉથી જાહેર કરતું નક્ષત્ર હતું, પણ ઋતુઓ પાછળ પડવાથી તેનો એ કાર્ય માટે કોઈ ઉપયોગ રહ્યો નહીં, તેથી તેને નવી નક્ષત્ર યાદી માં પડતું મૂકવામાં આવ્યું, કારણકે આમેય તે રવિમાર્ગથી ઘણે દૂર આવેલું નક્ષત્ર છે.

इसके अलावा चौखम्भा विद्याभवन द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध वैदिक ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त की टीका और (संस्कृत–ज्योतिष विषय में ई. स. २०१९ में राष्ट्रपति अवॉर्ड से सम्मानित पं. सत्यदेवशर्मा कृत) हिन्दी भाषान्तर की प्रस्तावना में भी २८ नक्षत्रों की बात को पुष्टि मिलती है। प्रस्तावना पेज नं. () में निम्नलिखित जानकारी मिलती है:

अपेक्षाकृत और भी अल्प पुष्टि होती है। तै. ब्रा. में एक स्थान पर (4.4,10,1-3) प्रत्यक्षरूप से एक नवागत नाम 'अभिजित्' का उल्लेख है। मैत्रायणी संहिता (2.13,20) तथा अथर्ववेद की तालिकाओं (19.7,1, 8,1) में इसका अनुसरण किया गया है। यह सर्वथा संभव है कि आरम्भिक नक्षत्र संख्या 28 ही रही हो, जिसमें से 'अभिजित्' इसलिये निकल गया क्योंकि वह धुँधला अथवा अत्यधिक उत्तर की ओर स्थित है। अथवा इसलिये भी हो सकता है कि 27 एक अपेक्षाकृत रहस्यमयी (3× 3×3) संख्या है। यह ध्यान रहे कि चीन के 'सिऊ' (Sieou) और अरब के 'मनाजिल' की संख्या भी 28 ही है।

इससे यह फलित होता है, कि २८ नक्षत्र और उसमें अभिजित का समावेश जैनशास्त्र और प्राचीन आर्य परम्परा द्वारा सम्मत है ।

(२) नक्षत्रोंका विस्तार समान या असमान ?

पिछले प्रकरणों में देखा कि खगोल और ज्योतिष दोनों का आधार नक्षत्र के सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के योग में है। इसलिए प्रत्येक नक्षत्र का विस्तार कितना है, यह तय करना पड़ता है। इस हेतु जैनमत और प्राचीन सनातन (वैदिक) मत मानता है, कि नक्षत्रों का विस्तार असमान है। फिर भी अर्वाचीन वैदिक ग्रन्थ तथा यूरोपीय खगोलशास्त्र का मत है, कि नक्षत्र के विस्तार समान हैं ।

सबसे पहले जिनमत और प्राचीन वैदिक मत को जानते हैं:

जिनमत : सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, जीवाजीवाभिगम, ठाणांग, मण्डलप्रकरण आदि ग्रन्थों में १५ नक्षत्रों को समक्षेत्री, ६ नक्षत्र अर्धक्षेत्री, ६ नक्षत्र सार्धक्षेत्री और **अभिजित** को शेष क्षेत्र दिया है।

मण्डल प्रकरण की गाथा नं. ८७ से ९० में चन्द्र-सूर्य का नक्षत्र के साथ का योगकाल दिया गया है:

८७. अभिइस्स चंदजोगो, सत्तट्ठीखंडिओ अहोरत्तो ।
ते हुंति नव मुहुत्ता, सत्तावीसं कलाओ अ ।।

८८. सयभिसया भरणीओ, अद्द अस्सेस साइ जिट्ठाय ।
एए छनक्खत्ता, पन्नरसमुहुत्तसंजोगा ।।

८९. तिन्नेव उत्तराई, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
एए छन्नक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ।।

९०. अवसेसा नक्खत्ता, पन्नरस हवंति तीसइ मुहुत्ता ।
चंदम्मि एस जोगो, णक्खत्ताणं मुणेयव्वो ।।

सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर द्वारा प्रकाशित छोटुभाई सुथार द्वारा लिखित ब्रह्माण्ड दर्शन पुस्तक के १४९वें पेज पर भी प्राचीनकाल के असमान नक्षत्र का उल्लेख है, जो इस प्रकार है:

वेदांग ज्योतिष के बाद भारतियों का दूसरा ज्योतिष ग्रन्थ गर्गसंहिता है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई. स. पू. ९००–७०० तक का है। इस ग्रन्थ में वेदांत ज्योतिष की समान नक्षत्र विभाग की रचना के बदले असमान नक्षत्र विभाग की योजना है। यह योजना अयनों का मेल मिलाने हेतु धनिष्ठारम्भ में उत्तरायण लाने हेतु की गई। तत्पश्चात् यह योजना जैन विद्वानों ने भी चालू रखी, किन्तु अयन सरकते रहने के कारण बाद के खगोलशास्त्रियों ने उसे छोड़ दिया।

गर्ग संहिता आज उपलब्ध नहीं है। इसके बाद रचित ग्रन्थों में मुख्यतः सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, अथर्वज्योतिष और पांच सिद्धान्त (पितामह, वशिष्ठ, पोलिश, सौर और रोमक) है।

राष्ट्रपति अवॉर्ड द्वारा सम्मानित वैदिक पण्डित सत्यदेव शर्मा द्वारा लिखित सूर्यसिद्धान्त की हिन्दी टीका की प्रस्तावना के पेज नं. (xvi) से (xvii) पर निम्नलिखित उल्लेख है। इसका मूल **सिद्धान्तशिरोमणी ग्रन्थ** के स्पष्टाधिकार में **भास्कराचार्य द्वितीय** ने दिखाया है :

> लेकिन अभितक इन संस्कारों की ओर ध्यान न देकर पुराने 400 वर्ष पूर्व के बीज संस्कारों का हि उपयोग किया जाता है।
>
> भारत में वैदिक काल में क्रान्तिवृत्त को 28 नक्षत्र भागों में विभक्त किया गया था जो असमान मान के थे। यह बात भास्करादि आचार्यों के ग्रन्थों में प्राप्त होती है। ये मान चन्द्रमा के एक दिन की गति $13^{0}\ 10'\ 35''$ तुल्य, इसके अर्धतुल्य तथा इसके डेढ़ गुना तुल्य के थे। तथा शेष मान $4^{0}\ 14'\ 15''$ तुल्य अभिजित नक्षत्र का था। लेकिन बाद में इनको समान मान के करके गणनायें अश्विनि नक्षत्र से की जाने लगी जो शायद वैदिक काल में (2000 ई. पू.) कृत्तिका नक्षत्र से क्रान्तिवृत्तारम्भ मानने से आरम्भ हुई तथा वेदाङ्गज्योतिष काल (1350 ई. पू.) तक पूर्ण रूप से स्थापित हो गई, जब नक्षत्र चक्र धनिष्ठा नक्षत्र से आरम्भ होता था।
>
> यहाँ एक सारिणी देते हैं जो श्री मुखर्जी ने बनाई थी। इसमें इन्होंने योग ताराओं के नामकरण की नई पद्धति दी है जो आधुनिक ग्रीक अक्षरों के नामकरण के आसन्न है। यह सारिणी सिद्धान्त ग्रन्थों में दी गई सारिणी से बहुत विस्तृत है। यह कार्य शोधार्थियों के लिए अति महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सिद्ध होगा।

सारिणी

Nakshatra	Initial Point (Equal div.)			Initial Point (Unequal div.)			Yogatara-with Nirayana Long. (After Burgess)				As Identified by the author	
	S	0	1	S	0	1		S	0	1		
Asvini	0	0	0	0	0	0	β Arictis	0	10	7	1	Meshasya
Bharani	0	13	20	0	13	11	41 Arietis	0	24	21	3	Meshasya
Krittika	0	26	40	0	19	46	η Tauri	1	0	8	20	Vrishasya
Rohini	1	10	0	1	2	56	α Tauri	1	15	56	1	Vrishasya
Mrigasiras	1	23	20	1	22	42	λ Orionis	1	29	51	11	Mrigasya
Ardra	2	6	40	2	5	53	α Orionis	2	4	54	2	Mrigasya
Punarvasu	2	20	0	2	12	28	β Geminor	2	29	22	1	Mithunasya
Pushya	3	3	20	3	2	14	δ Cancri	3	14	52	3	Karkatasya
Aslesha	3	16	40	3	15	25	δ Hydrac	3	18	29	2	Hrada-Sarpasya
Magba	4	0	0	3	22	0	α Leonis	4	5	58	1	Simhasya
P.Phalguni	4	13	20	4	5	11	δ Leonis	4	17	27	4	Simhasya
U.Phalguni	4	26	40	4	18	21	β Leonis	4	27	46	2	Simhasya
Hasta	5	10	0	5	8	7	δ Corvi	5	19	36	2	Karkatasya
Chitra	5	23	20	5	21	18	α Virginis	5	29	59	1	Kanyah
Svati	6	6	40	6	4	28	α Bootis	6	0	23		Nishthya
Visakha	6	20	0	6	11	3	α Libra	6	21	14	1	Tulasya
Anuradha	7	3	20	7	0	49	δ Scorpii	7	8	43	5	Vriscikasya
Jycstha	7	16	40	7	14	0	α Scorpii	7	15	54	1	Vriscikasya
Mula	8	0	0	7	20	35	λ Scorpii	8	0	44	2	Vriscikasya
P.Asadha	8	13	20	8	3	46	δ Sagittarii	8	10	43	3	Dhanusah
U.Asadha	8	26	40	8	16	56	α Sagittarii	8	18	32	2	Dhanusah
Abhijit		------	9	9	6	42	α Lyrac	8	21	27	1	Vinayalu
Sravana	9	10	0	9	10	57	α Aquilac	9	7	55	1	Garudasya
Dhanistha	9	23	20	9	24	7	β Delphini	9	22	29	1	Sravisthasya
Satabhisaj	10	6	40	10	7	18	λ Aquarii	10	17	43	7	Kumbhasya
P.Bhadrapada	10	20	0	10	13	53	α Pegasi	10	29	38	3	Pakshirajasya
U.Bhadrapada	11	3	20	10	27	4	γ Pegasi	11	15	18	1	Dhruvamatuh
Revati	11	16	40	11	16	49	ι Piscium	11	26	1	6	Minasya
Asvini	12	0	0	12	0	0						

इस मामले में ब्रह्माण्ड दर्शन ग्रन्थ के १६१वें पेज पर छोटुभाई सुथार बताते हैं:

भारत के पुराने विख्यात खगोलशास्त्रियों में भास्कराचार्य काफी प्रसिद्ध हैं। ई. स. १११४ में जन्मे इस विद्वान ने ३६ वर्ष की उम्र में सिद्धान्त शिरोमणी और ६९वें वर्ष में करणकुतूहल नामक ग्रन्थ रचे। सिद्धान्तशिरोमणी में ज्योतिष सिद्धान्त की सभी हकीकतें विस्तार और उपपत्ति से दी गई है। खगोलशास्त्रीयाँ सिद्धान्तशिरोमणी की उत्तम ग्रन्थ के रूप में गणना करते हैं। करणकुतूहल पंचांग बनाने हेतु एक उपयोगी ग्रन्थ है।

भास्कराचार्य ने आकाश के प्रत्यक्ष वेध कम लिए हैं। इसके बाद भी चन्द्रगणित का तिथिसंस्कार की खोज का उनका कार्य अत्यन्त महत्त्व का माना जाता है।

खगोलशास्त्रियों में भास्कराचार्य वास्तव में भास्कर या सूर्य जैसे थे। उनके बाद उनके जैसा समर्थ शास्त्री कोई नहीं हुआ।

उन्होंने भी विक्रम की सातवीं और आठवीं सदी में हुए प्रसिद्ध खगोलशास्त्री, गणितशास्त्री **ब्रह्मगुप्त और वटेश्वराचार्य** के ग्रन्थों में से यह जानकारी ली। ब्रह्मगुप्त के बारे में जानकारी सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर से प्रकाशित **ब्रह्माण्ड दर्शन पुस्तक** में **(ले. छोटुभाई सुथार)** दी गई है, जो इस प्रकार है।

आर्यभट्ट और **वराहमिहिर** के बाद हुए प्रख्यात खगोलशास्त्री **ब्रह्मगुप्त** थे। ब्रह्मगुप्त का जन्म उस समय के उत्तर गुजरात की प्रसिद्ध राजधानी भीमाळ (या श्रीमाळ) में ई. स. ५९८ में हुआ था। उन्होंने खगोलशास्त्र पर दो ग्रन्थ लिखे, (१) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, और (२) खण्ड खाद्यक। ये दोनों ग्रन्थ बाद में अरबीभाषा में भाषान्तरित होकर **अल सिंह हिंद** और **अल अर्कंन्द** के नाम से विख्यात हुए। उन ग्रन्थों के कारण भारतीय खगोल और गणितशास्त्र आरब लोगों द्वारा सम्मानित हुआ। इतना ही नहीं, दूर तुर्किस्तान तक भी इसकी प्रतिष्ठा पहुँची। ब्रह्मगुप्त ने प्रथम ग्रन्थ ३२ वर्ष की उम्र में और दूसरा ग्रन्थ ६९ वर्ष की उम्र में लिखा था। ब्रह्मगुप्त खगोलशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। जबकि यूरोपीय खगोलशास्त्र में सभी नक्षत्रों का विस्तार समान माना गया है, अतः यह प्राचीन मत से विरोधी है। ऐसा क्यों हुआ, इसका कोई ठोस कारण जानने को नहीं मिलता । सिद्धान्त शिरोमणी पेज नं. २०६ से २०८ नीचे प्रस्तुत किया गया है।

इदानीं सूक्ष्मनक्षत्रानयनमाह—

स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः ॥७१॥

सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै।

अध्यर्धभोगानि ११८५।५२ षडत्र तज्ज्ञाः।

प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि॥७२॥

षडर्धभोगानि च ३९५। १७ भोगिरुद्र-

वातान्तकेन्द्राधिपवारुणानि।

शेषाण्यतः पञ्चदशैकभोगा-

न्युक्तो भभोगः शशिमध्यभुक्ति ७९०।३५ ॥७३॥

सर्वर्क्षभोगोनितचक्रलिप्ता वैश्वाग्रतः स्यादभिजिद्भभोगः।

कलीकृतादिष्टखगाद्विशोध्य दास्रादिभोगान् गतभानि विद्यात्॥७४॥

विशुद्धसंख्यानि गतं तु शेषमशुद्धभोगात् पतितं तदेष्यम्।

गतागते षष्टिगुणे विभक्ते ग्रहस्य भुक्त्या घटिका गतैष्या॥७५॥

सूक्ष्म नक्षत्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अभी तक पूर्व में जो नक्षत्र का आनयन करना बताया है वह स्थूल है उसको मात्र लोक व्यवहारार्थ के लिए कहा गया है। अब पुलिश, वशिष्ठ, गर्गादि आचार्यों के अनुसार विवाह, यात्रादि के सम्यक फल सिध्यर्थ के लिए उनके सूक्ष्म आनयन को कहते हैं। विशाखा, पुनर्वसु, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्र अध्यर्ध-भोग संज्ञक हैं। आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती, भरणी, ज्येष्ठा तथा शतभिषा ये छः नक्षत्र अर्ध-भोग संज्ञक हैं तथा शेष १५ नक्षत्र समान भोग संज्ञक हैं। इनका चंद्र गति ७९०/३५ के तुल्य भोग होता है। चंद्रगति में इसकी अर्ध गति युक्त भोग ११८५।५२ तुल्य वाले नक्षत्र अध्यर्ध संज्ञक हैं। चंद्र गति से अर्धगति के भोग तुल्य नक्षत्र अर्ध भोग संज्ञक हैं। सर्वर्क्षभोग २१३४६ को चक्र कला २१६०० में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य अभिजित नक्षत्र का भोग २५४।१८ होता है।

ग्रह की कला बनाकर अश्विन्यादि से नक्षत्रों की भुक्त कला को घटाने से जो शुद्ध संख्या घटे वह गत नक्षत्र जाने तथा शेष कला वर्तमान नक्षत्र की कला होती है। जो अशुद्ध नक्षत्र भोग का शेष है वह उसका भोग्य है तथा उसकी ऐष्य संज्ञा है। उस गत तथा ऐष्य कला को ६० से गुणा करके ग्रह गति से विभक्त करने से प्राप्त फल गत तथा ऐष्य घटियाँ होती हैं।

उपपत्ति— इनकी उपपत्ति का आगम ही प्रमाण है। क्योंकि इस प्रकार नक्षत्रानयन पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य-ब्रह्म सिद्धान्तोक्त प्रकार से कहे गये हैं।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार के अध्याय ६ में पूर्णरूप से भास्करोक्त ही कहा है। यथा—

"स्थूलोऽयं स्पष्टोऽसावध्यर्ध समार्धभोगो यः।
तं वच्म्यधुनाऽभिजितः स्फुटभोगोऽहं विशेषेण॥३॥
ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्यान्यध्यर्धभोगसंज्ञानि।
वारुण सार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्रान्यर्ध भोगीनि॥४॥
समभोगीन्यन्यानि समभोगो मध्यमा गतिः शशिनः।
स्वदलयुताऽध्यर्धाख्यो भागो दलिताहिखण्डमध्यः॥५॥
भगणाश्चक्राच्छुद्धा भोगोऽभिजितोऽथवेन्दु भगणहृताः।
क्ष्महाः फलं भहीनं घटिकाद्यो भघ्नशशि भगणाः॥६॥
वियुक्ताः क्वहादृगतिघ्ना भगणविभक्ताः विधोः कलादिर्वा।
भगणकला शशिभुक्त्या भजिताः शेषोऽथवा प्रोक्तः॥७॥
द्युचरो भभोगहीनो गतयेया लिप्तिकाः स्वभुक्तिहृताः।
भवति दिवसादिभोगो द्युचराक्रान्तस्य धिष्ण्यस्य॥८॥"

यहाँ आचार्य ने कुछ विशेष भी कहा है। वटेश्वर ने ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है।

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गत्युक्तराध्याय में कहा है कि पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य तथा ब्रह्म सिद्धान्त में जो नक्षत्रानयन कहे गयेहैं वे आर्यभट कथित आनयन नहीं हैं। अतः उन सभी आचार्यों की उक्ति उचित है तथा सूक्ष्मनक्षत्रानयन उन्हीं के अनुसार करना चाहिये। यथा—

"पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु प्रोक्तम्।
तन्नक्षत्रानयन नार्यभटोक्तं तदुक्तिरतः॥४६॥"

आगे के श्लोक में भास्करोक्त तथा वटेश्वरोक्त ही कहा है। यथा—

"अध्यर्धानि भवन्ति षड्नक्षत्राण्युडूषडर्धानि।
पञ्चदश समक्षेत्राण्यभिजिद् भोगो भवत्येकः॥४७॥
केशादित्य विशाखा प्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि।
षड् षड् ज्येष्ठा भरणी स्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः॥४८॥
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽभिजिदुक्त ऋक्षभोऽन्यः।
सस्मात्रन्नक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥४९॥

अध्यर्धार्धसमक्षेत्राणं मध्यगति लिप्तिकाः शशिनः।
अध्यर्धार्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योनाः ॥५०॥
मण्डललिप्ताः शेषोऽभिजितो भोगः शशाङ्कभगणा वा।
त्रिघनगुणाः संशोध्याः कल्पदिनेभ्यो यदवशेषम् ॥५१॥
तदभगणैर्दिनभोगोऽभिजितो भोगो भभोगलिप्तोनाः।
भानिग्रहभुक्तकला गतगम्या गतिहता दिवसाः ॥५२॥''

इसमें गणित की सुविधा के अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता। **सत्यदेवशर्मा की सूर्यसिद्धान्त पुस्तक की प्रस्तावना में** (xx) पेज पर भी यह चीज दी गई है ।

बाद में संहिताओं में अनेकत्र चन्द्रमा और नक्षत्रों के परस्पर सम्बन्ध की एक वैवाहिक बन्धन के रूप में कल्पना की गई है। काठक तथा तैत्तिरीय संहिताओं में स्पष्ट रूप में कहा है कि सोम सभी नक्षत्रों के साथ विवाहित होने पर भी केवल 'रोहिणी' के साथ रहने से अन्य नक्षत्रों के रुष्ट हो जाने से वे सभी के साथ बराबर अवधियों तक रहने लगे। इससे यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि नक्षत्रों का विस्तार तब से बराबर माना जाता था। दोनों ही इन संहिताओं में वर्णित इस कथा में नक्षत्रों की संख्या 33 (तैति.)

फलितार्थ इतना ही है, कि सम, सार्ध, अर्ध और शेष – ये विभाग करके ही नक्षत्रों का सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के साथ के योग आयोजित होने चाहिए। इस मामले में विद्वानों को विचार विमर्श करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में छोटुभाई सुथार अपनी पुस्तक ब्रह्माण्डदर्शन के **पेज नं. १८० पर विभागात्मक और तारात्मक,** दो प्रकार की नक्षत्र व्यवस्था दिखाते हैं। इससे स्पष्ट होता है, कि प्राचीन काल **तारात्मक नक्षत्रों** का ही था ।

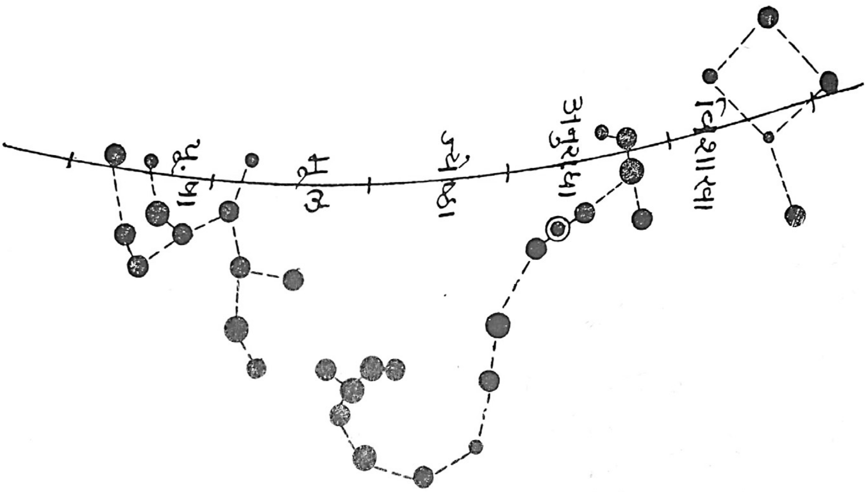

पंचांग में दिए नक्षत्र विभागात्मक नक्षत्र हैं। ये सब रविमार्ग का विभाग दर्शाते हैं। इन विभागों के पास आए तारा–झुमका वाले नक्षत्रों को तारात्मक नक्षत्र कहा है। आकाश दर्शन या तारा परिचय करते समय इन तारात्मक नक्षत्रों का उल्लेख किया जाता है। इसके साथ तारात्मक और विभागात्मक नक्षत्रों की समझ देने वाली आकृति दी गई है जिससे इन दोनों का भेद स्पष्ट हो जाएगा। पाठक देखेंगे कि विभागात्मक नक्षत्र एक–सरीखे अन्तर में आए हुए हैं, जबकि तारात्मक नक्षत्र इस प्रकार नहीं हैं । सामान्य व्यक्ति तारात्मक नक्षत्र की मदद से चन्द्र कौनसे नक्षत्र में है, यह बता सकता है। (**ब्रमांड** दर्शन Book में से साभार)

इसके उपरान्त इतना तय है, कि समक्षेत्री, सार्धक्षेत्री, अर्धक्षेत्री – ये सिद्धान्त हैं, इनमें बदलाव बिलकुल नहीं होगा । हाँ ! फिरभी पहले बताए अनुसार गाणितिक भूमिका में प्रत्यक्ष के साथ मेल करने हेतु संस्कार किया जा सकता है।

नक्षत्रका चन्द्र के योग के साथ संस्कार

जिनमतानुसार नक्षत्र मास २७.३१३ दिन = २७ दिन, ७ घण्टे ३१ मिनिट लगभग होता है, और आधुनिक खगोलशास्त्र के अनुसार २७.३२१६६१ दिन = २७ दिन, ७ घण्टे ४३ मिनिट दिखाया है। मतलब एक नक्षत्र मास पर १२ मिनिट का भेद आता है । इसमें भेद को अवकाश शायद होगा ।

सम्भावना :

(१) वर्तमान खगोलशास्त्र का प्रतिपादन स्थूल हो सकता है,

(२) जिनमत में दिखाया गया गणित स्थूल हो सकता है।

उपाय : यदि जिनमत में दिखाया गया गणित स्थूल मानें, तो (१) गणित की सरलता के लिए हर महीने **अभिजित का माप** करीबन **१२ मिनिट** बढ़ाएँ, (२) अंदाजित १२ मिनिट को २७ नक्षत्रों में विभाजित करें, तो प्रत्येक नक्षत्र को २६.६ सेकिण्ड मिलेंगे, किन्तु उसे समक्षेत्री, सार्धक्षेत्री और अर्धक्षेत्री में विभाजित करने पर समक्षेत्री में २६.६ सेकिण्ड, अर्धक्षेत्री में १३.३ सेकिण्ड और सार्धक्षेत्री में ३९.९ सेकिण्ड का संस्कार जोड़ना पड़े। यह विचारणा मात्र है, गीतार्थ महापुरुष इस पर विचार करके मार्गदर्शन दे सकते हैं **ताकि समक्षेत्री, अर्धक्षेत्री और सार्धक्षेत्री का सिद्धान्त भी अनुसरित हो और वर्तमान के साथ एक महीने का गणित भी मेल खाए ।**

(३) सायन-निरयन बिन्दु की सत्यता

सायन–निरयन पद्धत्ति की सत्यासत्य की विचारणा करने से पूर्व जैन शास्त्रों में आने वाले सिद्धान्त याद कर लेते हैं। सूर्य और चन्द्र की मेरू का फेरा लगाने वाली (१) पूर्व–पश्चिम गति, और (२) उत्तर–दक्षिण गति – इन दो गतियों का उल्लेख इस विषय के सभी प्रतिपादक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। सूर्य–चन्द्र की इन दो गतियों का क्रमशः कार्य (१) नक्षत्रों के साथ योग करना, और (२) उत्तरायण–दक्षिणायन का तथा ऋतुओं[१] का निर्णय करने का है। यह **सिद्धान्त (निश्चय) है, इसमें कभी भी परिवर्तन सम्भव नहीं है।** किन्तु अब बात आती है गणित की (व्यवहार की)। सूर्य की इन दोनों गतियों का माप शास्त्रों में ३६६ दिन का माना है। यूरोपीय खगोलशास्त्र / प्रत्यक्ष आकाश इन दोनों गतियों के माप को ३६६ से अति–निकट का, किन्तु थोड़ा अलग मानता है। उनके मतानुसार (१) **सूर्य–चन्द्र की पूर्व–पश्चिम गति ३६५.२५६३६४ दिन = ३६५ दिन, ६ घण्टे, ९ मिनिट और ९.८४९६ सेकिण्ड है, (२) जबकि उत्तर–दक्षिण गति ३६५.२४२१९ दिन = ३६५ दिन, ५ घण्टे, ४८ मिनिट और ४५.२१६ सेकिण्ड है।** इन दोनों गतियों का माप में भी आनुपातिक सामान्य रूप से घट–बढ़ हो सकती है, वे ऐसा भी मानते हैं। बस ये दो भिन्न गतियाँ ही सायन और निरयन है। वैज्ञानिक परिभाषा में उसे Sun का Sidereal और Tropical वर्ष माना गया है। [२]**इन दोनों के बीच ०.०१४१७४ दिन = २० मिनिट, २४.६३३६ सेकिण्ड का फर्क हर वर्ष रहता है ।** जिसे यूरोपीय खगोल की परिभाषा में लगभग **५०.२ विकला का फर्क** कहा गया है। हालाँकि सर्वज्ञता के अभाव में ये दोनों माप यूरोपीय विद्वान भी सम्पूर्ण रूप से निश्चित नहीं कर पाए। भिन्न–भिन्न विद्वान इनका माप कुछ अलग मानते हैं, अतः सायन और निरयन वर्ष के बीच का अन्तर भी सतत बदलेगा। थोड़े वर्ष पूर्व इस माप **३३ विकला** माना जाता था। पिछले कुछ

---

१. ऋतुओंके निर्णय सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायन से होता है ।

२. यही पुस्तक पेज नं. १५८ के बाद का परिशिष्ट को देखने से स्पष्ट बनेगा ।।

वर्षों में यह माप संस्कारित होकर **४७ विकला से ५२ विकला** के बीच माना जाता है। अभी इस माप को ५०.२ विकला तय किया गया है, फिर भी भिन्न–भिन्न विद्वान अयनांशों को अलग–अलग मानते हैं, जिसकी जानकारी नीचे दिए गए अनुसार है :

(१) Topic (विषय):

Tropical and sidereal systems (निरयन तथा सायन पद्धत्ति में) Tropical (western) system + -yanamsa = sidereal system निरयन (पाश्चात्य) पद्धत्ति + अयनांश = सायन पद्धत्ति।

तारीख २०/१२/२०१७ को सुबह ९ बजकर १५ मिनिट पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिए गए अयनांश मूल्य की जानकारी इस प्रकार है :

Sr.	Name of Ayanamsa giver	Value	Additional Information if any
1.	Traditional Lahiri	24°06’ 28.98”	Prof.N.C.Lahiri Commission was set up by Govt. of India to adopt one calender.
2.	True Lahiri/	24°05’ 31.73”	Star named spica has been taken in chitrapaksha the middle of chitra asterism always.
3.	Pushya - Paksha	22°58’ 23.57”	Sh. PVR Narasimha Rao, Aniitan, Now retted in Borton, U.S.A
4.	Raman	22°39’ 43.26”	Dr. B.V. Raman, who revived vedic astrology in India and abroad.
5.	Krishanamoorthy	24°00’ 41.28”	A great Scholar, Who developed his (KP) own new system in Astrology
6.	Jagannatha	24°06’ 24.53”	Lord jagnnath Temple Puri, In Which star named Spica has been taken in the middle of chitra asterism always but fixed solar

			rotation plane taken.
7.	Rohini - Paksha	23°22’ 25.50”	Fixed star named Aldebaran has been taken in the middle of Rohini asterirm alway.
8.	Sri Surya Siddhanta	22°46’ 48.67”	A great scholar, who developed planetary analytical model used by ancient Indian astrologer. Drik siddhanta is planetary poritionrs obrerved by moden planetarium.
9.	Deva - datta	23°43’ 51.98”	-
10.	usha - sharhi	20°18’ 30.74”	-
11.	Yukteshwar	22°43’ 47.28”	-
12.	J.N Bharin	23°00’ 47.28”	-
13.	chandra Hari	24°50’ 00.15”	-
14.	Fagan	24°59’ 29.07”	-
15.	Deluce	28°03’ 38.26”	-
16.	Diwhal khul	28°36’ 38.43”	-
17.	Aldebaranat 15° Taururoo’	25°00’ 37.53’’	-
18.	Gala	27°06’ 14.21’’	-
19.	Hipparchor	20°29’ 55.64’’	-
20.	Sassanian	20°14’ 38.25’’	

प्राचीन वैदिक काल में ये दोनों माप ३६६ दिन के ही स्वीकार किए गए होंगे। हो सकता है, कि गणित की सरलता हेतु यह व्यवस्था हुई हो। सूर्य की दो प्रकार की गतियाँ जिनमत को मान्य ही हैं, इसलिए शायद ऐसा हुआ हो कि स्थूल गणित से यह माप ३६६ दिखाया हो और विद्वान महापुरुषों के पास इसका आम्नाय पूर्वकाल में रहा होगा, लेकिन कदाचित् इस परम्परा के ज्ञान का वर्तमान में कोई जानकार ही न हो। दूसरी ओर आकाश का निरीक्षण

करने से स्पष्ट दिखता ही है कि पूर्व के काल की भाँति अभी सूर्य का उत्तरायण मकर संक्रान्ति में और दक्षिणायन कर्क संक्रान्ति में होता ही नहीं। हमारे जैसे लोग भी आकाश के निरीक्षण से या अपनी परछाई की दिशा से अभी उत्तरायण है या दक्षिणायन, इसका निर्णय कर सकते हैं। इसलिए ऐसा मानना होगा कि गणित की सरलता हेतु वैदिक या जैन शास्त्रों में ३६६ दिनों की व्यवस्था स्थूल रूप से दिखाई गई होगी। तो प्रश्न यह होता है, कि आकाश शास्त्रपाठ के अनुसार नहीं है या फिर हमारी समझ में कुछ कमी है? इस पर विचार करना है। शास्त्र कभी भी गलत हो ही नहीं सकते, पर कमी हमारी समझ में ही है। इसका समाधान देने से पहले कुछ बातें समझ लेते हैं।

(a) असत् कल्पना से व्यक्ति (१) अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर की ओर सरकते-सरकते, तथा (२) वर्तुलाकार, दोनों तरीकों से घूमता है। वर्तुलाकार घूमते हुए १ से १० मिनिट लगते हैं, अर्थात् जिस बिन्दु से घूमना प्रारम्भ किया, उसी बिन्दु पर पहुँचते हुए १० मिनिट लगते हैं, किन्तु अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर घूमते हुए १ से ९ मिनिट ही लगते हैं।

इस प्रकार	गोल घूमने में	अन्दर-बाहर घूमने में	भेद
1st Round	१ से १० मिनिट	१ से ९	१ मिनिट का भेद
2nd Round	११ से २० मिनिट	१० से १८	२ मिनिट का भेद
3rd Round	२१ से ३० मिनिट	१९ से २७	३ मिनिट का भेद
4th Round	३१ से ४० मिनिट	२८ से ३६	४ मिनिट का भेद
5th Round	४१ से ५० मिनिट	३७ से ४५	५ मिनिट का भेद
6th Round	५१ से ६० मिनिट	४६ से ५४	६ मिनिट का भेद
7th Round	६१ से ७० मिनिट	५५ से ६३	७ मिनिट का भेद
8th Round	७१ से ८० मिनिट	६४ से ७२	८ मिनिट का भेद
9th Round	८१ से ९० मिनिट	७३ से ८१	९ मिनिट का भेद
10th Round	–	८२ से ९०	१० मिनिट का भेद
11th Round	१ से १० मिनिट	१ से ९	दोनों एकत्र हुए

इसी प्रकार सूर्य की भी दोनों गतियाँ भिन्न होने के कारण दोनों Round अलग–अलग समय पर पूर्ण होने के कारण अवकाशीय रचना हर वर्ष बदलती है, इस कारण सायन–निरयन दो भेद होते हैं। पहले बताया उसके अनुसार हर वर्ष यह भेद प्रायः ५०.२ विकला, लगभग २० मिनिट के आस–पास होता है।

यहाँ यह बात याद रखनी है, कि दोनों गतियों के (सायन–निरयन) भेद के कारण वर्षों पूर्व २१/२२ दिसम्बर को ही सूर्य का उत्तरायण और मकर संक्रान्ति आती रही होगी, किन्तु अभी २१/२२ दिसम्बर को सूर्य का उत्तरायण शुरू हो ही जाता है। किन्तु कवि दलपतराम के समय में मकर संक्रान्ति १३ जनवरी को आती थी, फिर १४ जनवरी को आने लगी और पिछले दो–तीन वर्षों से १५ जनवरी को आने की शुरूआत हुई है। भविष्य के कुछ वर्ष बीतने के बाद क्रमशः १६, १७, १८ जनवरी को आने लगेगी। लगभग २५००० से २९००० वर्ष बाद यह बढ़ते–बढ़ते २१/२२ दिसम्बर वापिस आएगी। उस समय सायन–निरयन का भेद शून्य हो जाएगा।

ऋतुएँ सूर्य के नक्षत्र के साथ योग से नहीं, किन्तु सूर्य के उत्तरायण–दक्षिणायन से गिननी चाहिए, इसलिए चौमासा आगे–पीछे होने का प्रश्न ही नहीं रहता। उपरान्त, चन्द्रऋतु, कर्मऋतु और सूर्यऋतु में से वर्तमान में शास्त्रों में ऋतु की गिनती सूर्यऋतु के अनुसार ही होती है। ऐसा पाठ सूर्यप्रज्ञप्ति की टीका में भी मिलता है।

सू. ५७ की टीकाः छप्पि उऊपरियट्टा। एसो संवच्छरो उआइच्चो ।

अब, हिन्दूग्रन्थ जैसे वेदांग ज्योतिष या महाभारत में, और हमारे सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों में सूर्य के उत्तरायण–दक्षिणायन का जो समय मिलता है, उसका Chart नीचे दिए अनुसार है। इसका उल्लेख **ध ओरायन** पुस्तक के P. No. 31 पर है । **देखिए पिछले पृष्ठ पर दिया गया Chart.**

यहाँ याद रहे, कि यह Chart सभी नक्षत्रों को समक्षेत्री मानते हुए तैयार हुआ है, किन्तु इसे शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार सम, सार्ध और अर्धक्षेत्री मानकर बाँटें तो नक्षत्रों के उत्तरायण–दक्षिणायन के स्थान थोड़े आगे–पीछे

नीचे बताई गई तालिका नक्षत्रों में से गुजरने वाले रविमार्ग के चार महत्वपूर्ण बिन्दु, वसन्तसंपात, दक्षिणायन, शरदसंपात और उत्तरायण की अलग–अलग युग में स्थान बताती है:

चित्र क्रमांक	युग	वसन्त–संपात	दक्षिणायन	शरद–संपात	उत्तरायण
चित्र १	६००० वर्ष ई.पू.	पुनर्वसु	हस्त	पूर्वाषाढ़ा	उत्तरा भाद्रपदा
चित्र २	५००० वर्ष ई.पू.	आर्द्रा	उत्तरा फाल्गुनी	मूल	पूर्वा भाद्रपदा
चित्र ३	४००० वर्ष ई.पू.	मृग	पूर्वा फाल्गुनी	ज्येष्ठा	शततारका
चित्र ४	३२०० वर्ष ई.पू.	रोहिणी	मघा	अनुराधा	धनिष्ठा
चित्र ५	२८०० वर्ष ई.पू.	कृत्तिका	आश्लेषा	विशाखा	श्रवण
चित्र ६	१४०० वर्ष ई.पू.	भरणी	पुष्य	स्वाति	उत्तराषाढ़ा
चित्र ७	५०० वर्ष ई.स.	अश्विनी	पुनर्वसु	चित्रा	पूर्वाषाढ़ा
चित्र ८	२००० वर्ष ई.स.	रेवती	आर्द्रा	हस्त	मूल

होंगे। क्रम नम्बर ६ और ७ के बीच, अर्थात् ई. पू. २०० से ५०० के बीच के समयकाल में उत्तरायण–दक्षिणायन के जो बिन्दु दिखाए गए हैं, वे सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों के साथ १००% मेल खाते हैं। इससे सिद्ध होता है, कि सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों में जो उत्तरायण–दक्षिणायन के नक्षत्र बताए हैं, वे कोई एक निश्चित समय के नक्षत्र, चाहे (a) पांचवें आरे की शुरूआत के हो, या (b) सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थ की रचना के समय के हो, या (c) प्रभु के निर्वाण सम्वत् के हो, आदि। किन्तु त्रैकालिक ये ही नक्षत्र रहते हैं, ऐसी मान्यता कष, छेद, ताप आदि परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होती। भिन्न–भिन्न अयन बिन्दुओं का सम, सार्ध और अर्धक्षेत्री मान्यतानुसार गणित किया जाए, तो प्राचीन जैन खगोल/ज्योतिष ग्रन्थों में बताए अनुसार उत्तरायण–दक्षिणायन का अवकाश नीचे के समय के हिसाब से होगा:

१ वी.सं.२६५वां वर्ष	आज से २२७९ वर्ष पूर्व	४८.७ विकला भेद मानें तो
२ वी.सं. २३२वां वर्ष	आज से २३१२.५ वर्ष पूर्व	४८ विकला भेद मानें तो
३ वी.सं. २७९वां वर्ष	आज से २२६५.३ वर्ष पूर्व	४९ विकला भेद मानें तो
४ वी.सं. ३२४वां वर्ष	आज से २२२० वर्ष पूर्व	५० विकला भेद मानें तो
५ वी.सं. ३६८वां वर्ष	आज से २१७६ वर्ष पूर्व	५१ विकला भेद मानें तो
६ वी.सं. ४१०वां वर्ष	आज से २१३४ वर्ष पूर्व	५२ विकला भेद मानें तो
७ वी.सं. ४था वर्ष	आज से २५४० वर्ष पूर्व	४३.७ विकला भेद मानें तो

सूर्यप्रज्ञप्ति पर पू. भद्रबाहुस्वामी जी की निर्युक्ति थी, यानि कि सूर्यप्रज्ञप्ति का समय उससे भी अधिक प्राचीन है। पू. भद्रबाहुस्वामी वी. सं. १७०वें वर्ष में देवलोक हुए। अतः **सूर्यप्रज्ञप्ति उससे पहले का है, इसलिए लगभग पांचवें आरे के प्रारम्भ के अवकाश का निरूपण उसमें होगा, ऐसा क्यों नहीं मान सकते?**

Jain Astronomy पुस्तक के पेज नं. ६ पर ऐसी जानकारी मिलती है, जो यहाँ दिखाई गई है :

So in the light of foregoing discussion. It seems plausible that the present recension of Jaina canon may in a broader sense be assigned to fifth/sixth century A.D. But the Jaina canon, as Pingree[12] also opines, contains much that surely belongs to a far older period than the early sixth century A.D. Sūrya Prajñapti, one of the principal sources of Jaina astronomy, is also believed to have been written a few years before Christian era.[15] Acording to Srinivasiengar, Sūrya Prajñapti and Jambūdvīpa Prajñapti belong to a period of about 500 B.C. and Sthānānga, Uttarādhyana, Bhagavatī and Anuyogadvāra to about 300 B.C[16] According to some others,[18] Bhagavati, Uttarādhyayana and Anuyogadvāra belong to about first century B.C. : Samavāyānga to about fourth century B.C. and Prajñapana to about second century B.C. According to H.P. Bhatt,[17] Sūrya Prajñapti belongs to 400 B.C. and Candra Prajñapti to 200 B.C. According to K.S. Raghavan,[47] Sūrya Prajñapti was probably written in about 528 B.C.

अब दोनों गतियाँ भिन्न हैं, और सम, सार्ध, अर्ध और शेष – इन्हीं विभागों में अधिक बाँटना है, तो सूर्यनक्षत्र विषय में यूरोपीय खगोल और शास्त्रीय गणित का मेल करने हेतु उसमें क्या संस्कार करें ?

उत्तर : ३६६ दिन में से नक्षत्र के साथ हुए सूर्य के योगों का कुल वर्ष ३६५.२५६ दिन (आधुनिक) घटाएँ।

– जो संख्या आए उसे सम, सार्ध और अर्ध के माप में विभाजित करके उस माप को सूर्य नक्षत्र के पीरियड में से घटाएँ।

उदाहरण :

३६६.००००००००० दिन शास्त्रों में दिखाया गया सूर्य वर्ष का व्यवहारिक माप

३६५.२५६३७६०३७ दिन आधुनिक खगोल के अनुसार सूर्य वर्ष का नक्षत्र के योगों के साथ का माप

= ०.७४३६२३९६३ दिन का अन्तर = १७ घ. ५० मि. ४९.११०३६ से.

इस भेद को सम, सार्ध, अर्ध और शेष इन चार विभागों में बाँटने से (१) **समक्षेत्री नक्षत्र के १३ दि. ९ घ. ३६ मि. के माप में से लगभग ३९ मि. कम होते हैं। (२) सार्धक्षेत्री नक्षत्र के २० दि. २ घ. २४ मि. के माप में से लगभग ५८ मि. कम होते हैं। (३) अर्धक्षेत्री नक्षत्र के ६ दि. १६ घ. ४८ मि. के माप में से लगभग १९ मि. कम होते हैं, और (४) शेष (अभिजित) नक्षत्र के ४ दि. ४ घ. ४८ मि. के माप में से लगभग १२ मि. कम होते हैं।**

आज के समय में भी मुहूर्त हेतु नीचे दिए गए स्थानों पर नक्षत्र का उपयोग होता है, और यदि यह सूर्यप्रज्ञप्ति आदि आगमशास्त्रों में दिखाए गए नक्षत्र के समान माप के आधार पर लिया जाए तो ही यह शास्त्रोक्त कहा जा सकता है। प्रचलित किन्तु अशास्त्रीय परम्परा से नक्षत्र का मुहूर्त से सम्बन्धित उपयोग फलदायी न बनकर कदाचित् हानिकारक भी साबित हो सकता है।

१. विद्यारम्भ : इसमें अभ्यास का आरम्भ निश्चित नक्षत्र में करने से विशिष्ट फलदायी बनता है, वे नक्षत्र क्रमशः अश्विनी, मृगशीर्ष, पुष्य, ३ पूर्वा, हस्त, चित्रा, मूल, श्रवण, घनिष्ठा, आर्द्रा, स्वाति, शतभिषा और पुनर्वसु हैं। उसमें प्रथम ११ समक्षेत्री, बाद के ३ अर्धक्षेत्री और अन्तिम १ सार्धक्षेत्री, इस

प्रकार कुल १५ नक्षत्र विद्यारम्भ के लिए हैं। अब प्रश्न होता है, कि लौकिक पंचांग के अनुसार उपरोक्त १५ नक्षत्र समक्षेत्री, अर्थात् प्रायः २४ घण्टे के हैं, जबकि शास्त्रीय गणितानुसार अमुक नक्षत्र प्रायः १२ घण्टे के, अमुक नक्षत्र प्रायः २४ घण्टे के और अमुक नक्षत्र प्रायः ३६ घण्टे के हैं। इसलिए लौकिक परम्परा वाले समक्षेत्री भी १) लोकोत्तर परम्परा के अर्धक्षेत्री नक्षत्रों में शुरू होने वाला अभ्यास शास्त्रीय परम्परा का लोप करवाने, अर्थात् फलवंचक होगा, क्योंकि वास्तविकता में नक्षत्र-चन्द्र का योग पूर्ण हो चुका है। २) लोकोत्तर परम्परा के सार्धक्षेत्री नक्षत्रों को समक्षेत्री मानके शुरू होने वाला अभ्यास ज्ञान का अन्तराय कर्म बाँधेगा, क्योंकि लौकिक परम्परा से नक्षत्र समाप्त होने से हमने अभ्यास का प्रारम्भ रोक दिया, जबकि तात्त्विक दृष्टि से अभी भी योग चालू है। विद्यारम्भ हेतु संयोग सानुकूल होने पर भी अभ्यास आरम्भ न किया जाए या रोका जाए तो ज्ञान का अन्तराय बँधेगा ही न?

बस इसी प्रकार अनेक स्थानों पर नक्षत्र गणित में शास्त्रीय दृष्टिकोण का भंग होता है, जो नीचे लिखे अनुसार है:

२. लोच में, ३. दीक्षा में, ४. पदवी में, ५. प्रतिष्ठा में, अंजन में ६. विहार आदि में...

– इसके उपरान्त प्रभु के कल्याणकों की आराधना में भी नक्षत्र महत्त्वपूर्ण है, उनके पाठ कल्पसूत्र आदि में से सहजता से प्राप्त होते हैं।

– कालधर्म के बाद की मरणोत्तर क्रिया में भी नक्षत्र का योगदान महत्त्वपूर्ण साबित होता है।

– भक्ष्याभक्ष्य विषय के आचरण में भी नक्षत्र का योगदान है।

जैसे, सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में आए और आम का त्याग, ये दोनों जुड़ी हुई भूमिकाएँ हैं।

अब सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र का प्रारम्भ **जैनशास्त्रों के अनुसार मिथुन राशि की ५ कला ५३ अंश से होता है, जबकि आधुनिक परम्परा के अनुसार आर्द्रा नक्षत्र का प्रारम्भ मिथुन राशि की ६ कला ४० अंश से** होता है, अर्थात् लगभग **४७ अंश (डिग्री) का** भेद आता है, यानि लगभग **१ दिन का भेद पड़ता है।** इस

प्रकार वर्तमान में आर्द्रा नक्षत्र जिस समय बैठता है, वास्तव में आर्द्रा नक्षत्र उससे **१ दिन पहले ही बैठ जाता है।** और शास्त्रों के अनुसार आर्द्रा अर्धक्षेत्री होने के कारण लगभग **७ दिन पहले पूरा भी हो जाता है।** अतः जहाँ **सूर्य नक्षत्र की गणना** हो वहाँ सभी जगह **दिनों में भेद** आता है, और जहाँ **चन्द्र नक्षत्र की गणना** हो वहाँ घण्टों में भेद आता है। इस प्रकार **आराधना की शुद्धि हेतु** जैन नक्षत्रगणितका स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक लगता है।

सूर्यप्रज्ञप्ति-चंद्रप्रज्ञप्ति आदि जैनग्रंथ, सिद्धांतशिरोमणि आदि प्राचीन वैदिकग्रंथ, ब्रमाणदर्शन, ''ध ओरायन'' आदि अर्वाचीन वैज्ञानिक पुस्तके सभी का समन्वय, एवं मुहूर्त्तशुद्धि असमानभापके नक्षत्र गणितका स्वीकार करने में है यह याद रहे ।

इस सन्दर्भ में अधिक जानकारी प्राप्त करने हेतु इच्छुक व्यक्ति हमारा सम्पर्क कर सकते हैं। फिर से बता दें, कि यह सब मात्र सत्य के करीब पहुँचने के लिए विचारणा स्वरूप है, निर्णय स्वरूप नहीं। इस प्रकार जैनागमों के शास्त्रपाठ और वर्तमान खगोल, दोनों का समन्वय सध जाता है। इस मामले में गीतार्थ महापुरुषों को खूब गम्भीरता से विचार करना चाहिए। छद्मस्थ अवस्था के कारण कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो, तो इस हेतु मिच्छामि दुक्कडम्। गीतार्थ संविग्न महापुरुष इस सन्दर्भ में ध्यान आकर्षित करके मुझे उपकृत करें, ऐसी नम्र विनती ।

तिथि मीमांसा

(जैन ग्रन्थों के आधार पर तिथि से सम्बन्धित ठोस चर्चा–विचारणा)

ज्योतिषचक्र का व्यक्ति–समुदाय पर होने वाली असर का रहस्य

विश्व के सभी पदार्थ भले वह जीव हो या जड़, सभी पर द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की एक निश्चत असर होती दिखाई देती है। कैमेस्ट्री के सूत्रों के अनुसार O_2 = ऑक्सीजन (प्राणवायु), O_3 = ओजोन (जहरीली वायु) होती है। विज्ञान के अनुसार मात्र एक व्यावहारिक परमाणु द्रव्य की इतनी ताकत है कि वह प्राणवायु को प्राणघातक वायु में रूपान्तरिक कर देता है। सर्वज्ञ भगवन्त तो कहते ही हैं, कि प्रत्येक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपनी विशेष असर होती है, जो कभी लाभदायी तो कभी हानिकारक होती है। ये असर समष्टिगत या व्यक्तिगत, दोनों प्रकार से होती है। इस प्रकरण में काल द्रव्य का विशिष्ट चिन्तन किया गया है।

वर्तमान में भरत क्षेत्र में जब हुण्डा अवसर्पिणी काल चल रहा है, तो काल का अधिकतम नकारात्मक असर समष्टिगत रूप से हो रहा है। यहाँ प्रश्न उठता है, कि जीव और जड़ सृष्टि पर एक साथ ऐसी नकारात्मक असर डालने वाले तत्त्व क्या है ? उसका स्वरूप कैसा है ? वास्तव में काल के प्रवाह में हर पदार्थ या वस्तु के अलग-अलग स्वरूप, पर्याय या अवस्थाओं का सर्जन, विसर्जन या रूपान्तरण होता रहता है। छः द्रव्यों में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का समावेश होता है। काल का समावेश अजीव के उत्तरभेद में होता है। **प्रस्तुत निबन्ध में काल के (और इसकी शुभाशुभ असरों में) परिवर्तन का स्वरूप ज्योतिष के विविध भेद, सूर्य, चन्द्र, राहु (नक्षत्र और ग्रहों) के विमानों की गति से (जो भिन्न-भिन्न रत्नों से बने हैं) और उनके द्वारा निर्मित होने वाली तिथि के गणित के अनुसार समझाया गया है।**

[१]इन रत्नों के प्रकाश की विशिष्ट असर मध्यलोक के सभी पदार्थों पर होती है। यहाँ विशेष रूप से यह बात उल्लेखनीय है कि काल के साथ ज्योतिष चक्र में होने वाले परिवर्तनों के कारण ज्योतिष चक्र के विविध प्रकार के विमानों की सतह के रत्नों के तेज की ऊर्जा की असर भी समस्त ढाई द्वीप

---

१. रयणियर-दिणयराणं नक्खत्ताणं च महागहाणं ।
चारविसेसेण भवे **सुहदुक्खविही मणुस्साणं ॥** (देविंदत्थओ पयन्ना-गा.१३९)

के क्षेत्र में परिवर्तन प्राप्त करती रहती है। ढाई द्वीप के एक क्षेत्र में, अलग-अलग क्षेत्रों में, एक काल या अलग-अलग काल में ये असर अच्छी या खराब हो सकती है। ढाई द्वीप के बाहर स्थित असंख्य द्वीप और समुद्रों के आकाश में स्थित ज्योतिष विमान स्थिर या अचल होने के कारण वहाँ इस प्रकार की परवर्तित असर देखने को नहीं मिलती। इसलिए ढाई द्वीप से जुड़े काल की ज्योतिष विमानों द्वारा होने वाली अशुभ असर से बचने या शुभ असर का अधिक लाभ पाने के लिए ज्योतिष चक्र के परिवर्तित होने वाले शुभ–अशुभ मुहूर्त और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि के चाल के विशिष्ट सामंजस्य[१] से बनने वाले शुभ-अशुभ योगों की शास्त्रों में सूक्ष्मता और विस्तार से विचारणा की गई है। ढाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र आदि के स्थान सतत बदलते रहते हैं। तारों, ग्रहों और नक्षत्रों के भी परस्पर योग होने के उपरान्त भी (१) कल्पवृक्ष वाले युगलिक क्षेत्र में इस ऊर्जा का असर नहीं होता, (२) महाविदेह में भी अल्प असर होता है, किन्तु (३) भरत–ऐरवत क्षेत्र में अधिकतम प्रभाव होता है, इसलिए विशेष परिवर्तन वहाँ ही होता है।

उपरान्त आगमों में बताए अनुसार खगोलीय घटनाओं को दो विभागों में बाँटा जा सकता है। **(१) नित्य घटना, और (२) नैमित्तिक घटना।** अतः खगोलीय घटना की असर भी उपरोक्त दो प्रकार से होती है– **(१) नित्य असर** = सूर्य, चन्द्र, राहु और नक्षत्रों के दैनिक स्थान के आधार पर निश्चित होती है, और **(२) नैमित्तिक असर** = सूर्य–चन्द्रग्रहण और निश्चित नक्षत्रों का ग्रह, सूर्य और चन्द्र के साथ हुए योगों से होने वाली असर। जैन आगमों में तो सूर्य और चन्द्र की दैनिक गति और स्थान आदि का सूक्ष्म रूप से निरूपण दिखाया गया है, और उसके आधार पर गौण रूप से तिथि की व्यवस्था की गई है। साथ ही साथ **चन्द्र के साथ सतत घूमते नित्यराहु की बात बताकर तिथि निर्माण का मुख्य कारण राहु की गति को दिखाया गया है।** इस प्रकार राहु के रत्नों का प्रकाश और चन्द्र के रत्नों का प्रकाश–ये दोनों अलग–अलग पद्धत्ति से रोज आकाश में एकत्र होते हैं, इसलिए इनकी असर ढाई द्वीप की जीवसृष्टि पर पड़ती है। **इसलिए तिथि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।**

---

१. रयणियर-दिणयराणं नकखत्ताणं च महागहाणं च।
चारविसेसेण भवे **सुहदुक्खविही मणुस्साणं ॥** (देविंदत्थओ पयन्ना-गा.१३९)

ज्योतिष-खगोलीय ग्रन्थों में तिथि की मान्यता

(जैन एवं अन्य साहित्य की दृष्टि से)

सूर्यप्रज्ञप्ति उपांग सूत्र ४८/४९ में प्रभु से प्रश्न पूछा गया, कि दिन और रात्रि कितने हैं और वे कौन-कौनसे हैं ? प्रभु इसका उत्तर देते हुए कहते हैं, कि **पक्ष के** १५ दिन और १५ रात्रियाँ होती है, प्रथम दिवस, द्वितीय दिवस... पन्द्रहवां दिवस, इसी प्रकार प्रथम रात्रि, द्वितीय रात्रि...पंद्रहवीं रात्रि।

[१]ता कहं ते दिवसा आहियत्तिवइज्जा ?, ता एगमेगस्स णं **पक्खस्स** पनरस **दिवसा** पं.तं.-पडिवादिवसे बितियदिवसे जाव पण्णरसे दिवसे, ता एतेसि णं पण्णरसण्हं दिवसाणं **पन्नरस** नामधेज्जा पं.तं. [१]पुव्वंगे [२]सिद्धमणोरमे य तत्तो [३]मणोरहे (हरे) चेव। [४]जसभद्दे य [५]जसोधर [६]सव्वकामसमिद्धेति य ॥१॥ [७]इंद [८]मुद्धाभिसित्ते य [९]सोमणस [१०]धणंजए य बोद्धव्वे। [११]अत्थसिद्धे [१२]अभिजाते [१३]अच्चासणे य [१४]सतजए ॥२॥ [१५]अग्गिवेसे=उवसमे दिवसाणं नामधेज्जाइं। ता कहं ते **रातीओ** आहिताति वदेज्जा ?, ता एगमेगस्स णं **पक्खस्स** पण्णरस्स **राईओ** पण्णत्ताओ, तं जहा पडिवा राई बिदिया राई जाव पण्णरसा राई, ता एतासि णं पण्णरसण्हं राईणं पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं [१]उत्तमा य [२]सुणक्खत्ता, [३]एलावच्चा [४]जसोधरा। [५]सोमणसा चेव तहा [६]सिरिसंभूता य बोद्धवा ॥१॥ [७]विजया य [८]विजयंता [९]जयंति [१०]अपराजिया य [११]गच्छा य। [१२]समाहारा चेव तहा [१३]तेया य तहा य [१४]अतितेया ॥१॥ [१५]देवाणंदा=निरती रयणीणं णामधेज्जाइं ॥ (सूत्रं-४८) दसमस्स पाहुडस्स चउद्दसमं पाहुपाहुडं समत्तं ॥

दूसरा प्रश्न पूछा गया, कि तिथि किसे कहते हैं ? तो प्रभु उत्तर देते हैं, कि तिथि दो प्रकार की है, दिन की तिथि और रात्रि की तिथि। फिर उनके नाम दिखाए गए हैं।

ता कहं ते **तिही** आहिता ति वदेज्जा ? तत्थ खलु इमा **दुविहा तिही** पण्णत्ता, तं जहा दिवसतिही राईतिही य, ता कहं ते दिवसतिही आहितेति वदेज्जा ?, ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस २ **दिवसतिही**

---

1. ता कएं ते दिवसाणं नामधेज्जा आहिता ति वदेज्जा।–चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्

पण्णाता, तं-[१]णंदे, [२]भद्दे [३]जए [४]तुच्छे [५]पुण्णे पक्खस्स पंचमी पुणरवि [६]णंदे [७]भद्दे [८]जए [९]तुच्छे [१०]पुण्णे पक्खस्स दसमी पुणरवि [११]णंदे [१२]भद्दे [१३]जये [१४]तुच्छे [१५]पुण्णे पक्खस्स पण्णरसी, एवं ते तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणं, कहं ते **राईतिही** आहितेति वदेज्जा ? एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस राईतिही पं., तं-[१]उग्गवती [२]भोगवती [३]जसवती [४]सव्वसिद्धा [५]सुहणामा पुणरवि [६]उग्गवती [७]भोगवती [८]जसवती [९]सव्वसिद्धा [१०]सुहणामा पुणरवि [११]उग्गवती [१२]भोगवती [१३]जसवती [१४]सव्वसिद्धा [१५]सुहणामा, एते तिगुणा तिहीओ सव्वासिं रातीणं (सूत्रं ४९) दसमस्स पाहुडस्स पण्णरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥

अहोरात्रि	**दिन की तिथि का नाम**	**रात्रि की तिथि का नाम**	**तिथि**
प्रथम	नंदा	उग्रवती	प्रतिपदा
द्वितीय	भद्रा	भोगवती	द्वितीया
तृतीय	जया	यशवती	तृतीया
चतुर्थ	तुच्छा	सर्वसिद्धा	चतुर्थी
पंचम	पूर्णा	शुभनामा	पंचमी
षष्ठ	नन्दा	उग्रवती	षष्ठी
सप्तम	भद्रा	भोगवती	सप्तमी
अष्टम	जया	यशवती	अष्टमी
नवम	तुच्छा	सर्वसिद्धा	नवमी
दशम	पूर्णा	शुभनामा	दशमी
एकादश	नन्दा	उग्रवती	एकादशी
द्वादश	भद्रा	भोगवती	द्वादशी
त्रयोदश	जया	यशवती	त्रयोदशी
चतुर्दश	तुच्छा	सर्वसिद्धा	चतुर्दशी
पंचदश	पूर्णा	शुभनामा	पूर्णिमा/अमावस्या

ता पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं :- नक्खत्ते, चंदे, उडू, आइच्चे, अभिवड्ढिए ॥ सूर्य प्रज्ञप्ति सू.५७

संवत्सर के अनेक प्रकार हैं, उनमें एक का नाम **प्रमाणसंवत्सर** है, यह **प्रमाणसंवत्सर** भी पांच प्रकार का है–नक्षत्र संवत्सर, चंद्र संवत्सर, ऋतु

संवत्सर, आदित्य संवत्सर और अभिवर्धित संवत्सर। इन पांच में से ऋतु संवत्सर व्यवहार में निरंश (पूर्णांक) होने के कारण प्रसिद्ध है। सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्योतिष करण्डक आदि शास्त्रों में बताया है, कि :–

[1]``**कम्मो निरंसयाए मासो ववहारकारणो लोए ।**
सेसाओ संसयाए ववहारो दुक्करो घित्तुं ॥''

(ज्योतिष करण्डक ४ था प्राभृत–गाथा १४/१५,
और सूर्यप्रज्ञप्ति सू. ५७ की टीका में उद्धरण)

बाकी के संवत्सर का माप अपूर्णांक होने के कारण व्यवहार में ग्रहण करना कठिन होता है। इन पांचों संवत्सर का प्रमाण इस प्रकार है :–

प्रमाण संवत्सर के पांच प्रकारों का नाम :–

	चंद्र (Lunar Year)	सूर्य (Solar Year)	नक्षत्र	अभिवर्धित	ऋतु
माप (दिन में)	$३५४\frac{१२}{६२}$ (अहोरात्रि)	३६६ (अहोरात्रि)	$३२७\frac{५१}{६७}$ (अहोरात्रि)	$३८३\frac{४४}{६२}$ (अहोरात्रि)	३६० (अहोरात्रि)

अब व्यवहार में उपयोगी ऋतुमास हेतु सूर्यप्रज्ञप्ति के सूत्र ५७ की टीका में बताया है।

तथा चोक्तं :–``वे नालिया मुहुत्तो सट्ठी उण नालिया अहोरत्तो ।
पन्नरस अहोरत्ता पक्खो तीसं दिणा मासो ॥१॥
संवच्छरो उ बारस मासा पक्खाय ते चउवीसं ।
तिन्नेव सया सट्ठा हवंति राइंदियाणं तु ॥२॥
एसो उ कमो भणिओ निअमा संवच्छरस्स कम्मस्स ।
कम्मोति सावणोत्ति य उउ इत्तिय तस्स नामाणि ॥३॥

दो नालिका (=घड़ी)=मुहुर्त, ६० नालिका/३० मुहुर्त=१ अहोरात्रि

१. काललोक प्रकाश सर्ग-२८, पृ.५७/५८. ऊपर दिए गए श्लोक ३६६ के बाद भिन्न-भिन्न मास के प्रयोजन (संवत्सर=१२ मास, ऋतु संवत्सर का मास जो ऋतु मास है) के अन्तर्गत ऋतुमास का प्रयोजन दिखाते हुए कहा है, कि ऋतुमास परिपूर्ण ३० अहोरात्रि स्वरूप निरंश (पूर्णांक) होने के कारण लोकव्यवहार कारक है। इसीलिए इस ऋतुमास को शास्त्रों में कर्ममास भी कहा है। अर्थात् पूर्ण ३० दिवस का होने के कारण ब्याज आदि की गिनती इत्यादि लोकव्यवहार चलने में कर्म (=ऋतु) मास का ज्ञान उपयोगी है।

१५ अहोरात्रि = १ पक्ष, २ पक्ष या ३० दिन = १ मास

१२ मास / २४ पक्ष = १ वर्ष

१ वर्ष = ३६० दिन, अर्थात् ऋतु या कर्म या सावन संवत्सर को १ वर्ष कहते हैं। जैसे ३६० दिन = १ कर्मवर्ष और ३६० दिन ÷ १२ = ३० दिन का एक कर्ममास या ऋतुमास या सावनमास कहलाता है, तथा ३० दिन ÷ ३० = १ कर्मदिवस होता है। इसी प्रकार :

१ चंद्र वर्ष (Lunar year) = $३५४\frac{१२}{६२}$ दिन, तथा

$३५४\frac{१२}{६२}$ दिन ÷ १२ = $२९\frac{३२}{६२}$ दिन, अर्थात् पूरे २९ दिन + एक दिन के ६२ भाग में से ३२ भाग = १ चन्द्र मास (Lunar month) होता है।

या $२९\frac{३२}{६२}$ = २९ x ६२ + ३२ = १७८९ + ३२ = $\frac{१८३०}{६२}$

इस प्रकार $\frac{१८३०}{६२}$ अहोरात्रि = १ चन्द्र मास (Lunar month) तथा

$२९\frac{३२}{६२}$ दिन ३० = $२९\frac{३२}{६२}$ मुहूर्त का एक चन्द्र दिन **=(Lunar day)** होगा।

इस प्रकार **चन्द्र का १ दिन** (Lunar day) या **चन्द्र की १ तिथि** दोनों एक ही चीज है। इसी प्रकार १ सूर्य वर्ष से **एक सूर्य दिवस** या **१ सूर्य तिथि** दोनों एक ही है। एक कर्मवर्ष से **एक कर्म दिवस** (सावन दिवस) अर्थात् **एक कर्म (सावन) तिथि प्राप्त होती है।**

हिन्दू परम्परा में तो एक मान्यता ऐसी है, कि दिन और तिथि दोनों एक ही हैं। दिन से अलग तिथि की कोई परम्परा वैदिक काल में नहीं थी। इस सन्दर्भ में **शिवराज कौडिन्य** की व्याख्या सहित **लगधमुनि कृत ''वेदांग ज्योतिषम्''** नामक ग्रन्थ में व्याख्याकार ने अन्य प्राचीन ग्रन्थों के सूत्रों के आधार पर **सावन दिन और तिथि, दोनों एक ही हैं** ऐसा बताया है।

अहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा, मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहाऽऽर्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा इति [माध्यन्दिनीयवाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदमंत्र संहितायाम् (२२/२८)]

और इस सूत्र का अर्थघटन व्याख्याकार ने जो किया, वो उनके ही शब्दों में इस प्रकार है :–

वैदिकपरंपरायां खलु सामान्यतया **तिथिरहोरात्रात्मकः सावनदिनात्मको** वाऽपि स्वीक्रियते इति स्फुटतयाऽवगम्यते । तत्र वेदमंत्रसंहिता ब्राह्मणग्रंथेषु **अहोरात्रा**ऽर्धमास-मासादीनां क्रमबद्धतया उल्लेखस्य दर्शनात् तत्र **तिथिनामहोरात्रात्मकतायाः स्वीकृतत्वमवगम्यते ॥**

इसके उपरान्त उसमें बताया है कि ``वैदिकवाङ्मये **तिथिशब्दप्रयोग** एव दुर्लभः तिथिशब्दप्रयोगयोग्येषु स्थलेषु तथाऽ**हशब्दस्यैव** प्रयोगो दृश्यते । एतेनाऽपि वैदिक परंपराया **तिथेरहोरात्रात्मकत्वं** स्वीकृतमिति गम्यत एव ।''

उपरान्त जिनमत में भी कल्पसूत्र में ही भगवान के ५ कल्याणकों के सूत्रों में, यानि कुल २० स्थानों में कहीं तिथि शब्द का उपयोग नहीं है, किन्तु अहोरात्रि, पक्ष, दिवस आदि शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं ।

``तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स **छट्ठी पक्खेणं...''** (च्यवन का सूत्र) इसी प्रकार जन्म के सूत्र में ``तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स **तेरसीदिवसेणं** नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं विइक्कंताणं...'' इसी प्रकार बाकी के प्रभु श्री ऋषभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ के ५-५ कल्याणकों और वीर प्रभु के शेष ३ कल्याणकों के यानि कुल १८ सूत्रों में भी **कहीं भी तिथि शब्द** का उल्लेख नहीं हुआ ।

अब मूल बात पर आते हैं, कि तिथि और अहोरात्रि के बीच भेद को सूचित करने वाले दो प्रश्न पूछे गए, उनका ऐसा लें कि जो नन्दा, भद्रा आदि तिथियों के नाम हैं, वे और वर्तमान में जो प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियों के नाम हैं, ये दोनों अलग–अलग हैं । प्राचीन काल में नन्दा–भद्रा आदि तिथियाँ थी, जिनका वर्तमान में प्रचलन नहीं है **और अहोरात्रि शब्द से चन्द्र दिवस, सूर्य दिवस, ऋतु दिवस–इस प्रकार से जब जिसकी विवक्षा हो वह समझे, इस संदर्भ में निष्पक्ष बनकर संशोधनात्मक विचारणा करनी चाहिए ।**

तिथि–उत्पत्ति की सत्यता के विषय में तुलनात्मक विचारणा

१) वैज्ञानिक दृष्टि से और २) जिनागमों की दृष्टि से

१) वैज्ञानिक दृष्टि से :– सूर्य पश्चिम से पूर्व की ओर जाता है, और उसके आस–पास वलयाकार में पृथ्वी घूमती है। इसकी विशेष जानकारी ``जैन आगमिक गणित आधारित पंचांग प्रक्रिया'' में दी गई है, जो इस प्रकार है :–

भिन्न-भिन्न ऋतुएँ होना :– (a) आधुनिक खलोगशास्त्र :– जैसे पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, उसी प्रकार सूर्य के आस–पास भी उत्तर से दक्षिण, दक्षिण से उत्तर क्रमशः घूमती रहती है। उपरान्त पृथ्वी की तुलना में सूर्य अधिक बड़ा होने पर भी बहुत दूर है, इसलिए पृथ्वी के दिन–रात छोटे–बड़े होते हैं, और सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुएँ होती हैं। यहाँ याद रहे कि अक्षांश–रेखांश (Latitude - Longitude) की व्यवस्था त्रैकालिक नहीं है, बल्कि गणित के लिए बनाई गई है, उपरान्त इस मत से 23½ डिग्री झुककर पृथ्वी उसके (सूर्य के) आस–पास सतत घूमती है। मूल स्थान पर वापिस 365¼ दिन लगते हैं। इसे **सूर्य वर्ष** कहा गया है। इस सूर्य वर्ष का माप भी अनुमानित है, थोड़ा छोटा–बड़ा होना सम्भव है। पहले इस भेद को यूरोप के देशों ने Adjust नहीं किया, इसीलिए उन्हें कैलेंडर से १३ दिन कैंसिल करने पड़े। इसके द्वारा उन देशों के कैलेंडर जूलियन से ग्रेगोरियन कैलेंडर में परावर्तित हुए। अभी रशिया में जुलियन कैलेंडर ही चलता है, इसलिए रशिया और ग्रेगोरियन कैलेंडर (भारत, ब्रिटेन, अमेरिका) स्वीकार करने वाले देशों की तारीख में आज भी भेद आता है।

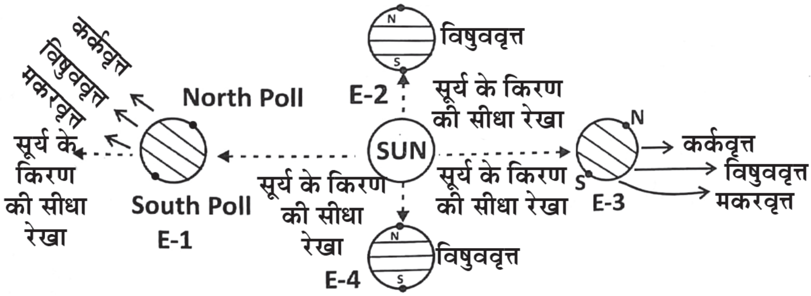

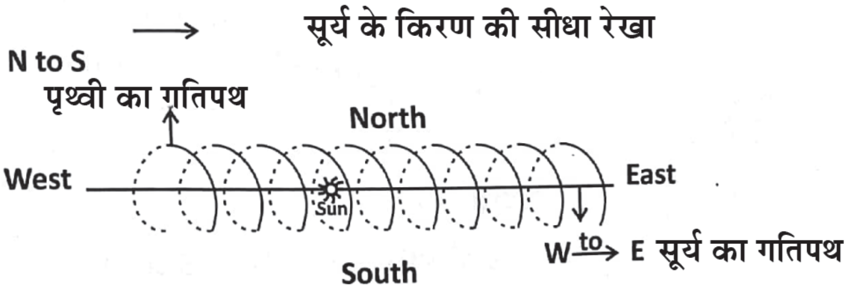

इसके उपरान्त इस पुस्तक के L, M, N और O पेज पर निम्नलिखित जानकारी दी गई है । **चन्द्र बिम्ब** का ढकना और खुलना, या तिथि की नियत व्यवस्था का निर्माण :–

(a) आधुनिक खगोलका मत :–

चन्द्र पृथ्वी के आस-पास, चन्द्रयुक्त पृथ्वी सूर्य के आसपास सतत भ्रमण करती है । अब पृथ्वी की अपेक्षा से सूर्य और चन्द्र के बीच १२ डिग्री का कोना एक तिथि है, क्योंकि चन्द्र पर प्रकाशित है । चन्द्र के जितने भाग से सूर्य का प्रकाश छूकर परावर्तित होकर हम तक पहुँचता है, उतना भाग हमें क्रमशः दिखाई देता है । पृथ्वी के चारों ओर घूमते चन्द्र पर सूर्य की किरणों का गिरना और उसका परावर्तन होकर पृथ्वी तक पहुँचना और उसके कारण चन्द्र का ढकना–खुलना, यह तिथि (Moon Phase) है । इस प्रकार तिथि जानने के लिए :–

(१) सूर्य का स्थान

(२) सूर्य की तुलना में पृथ्वी का स्थान

(३) पृथ्वी की तुलना में चन्द्र का स्थान

(४) सूर्य और पृथ्वी की तुलना में चन्द्र का स्थान, इन चार बातों की जानकारी चाहिए ।

(यह गणित बहुत कठिन है और अभी पहले की भांति हाथ से गणित करने वाले बहुत कम हैं । लगभग ६३ वर्ष पूर्व ई.सं. १९५८ में नासा कि स्थापना हुई । उसके बाद नासा ने इस गणित का सॉफ्टवेयर बनाया था, और अभी उस गणित के अनुसार दुनिया के स्टैण्डर्ड टाइम से वह डेटा बनाता है, उस डेटा के गणित से वर्तमान में तैयार होने वाले पंचांग हम अभी उपयोग कर रहे हैं । इस एस्ट्रोनॉमिकल डेटा के उपयोग की पद्धति अहमदाबाद के इसरो ब्रांच के वैज्ञानिकों को भी पता नहीं है, और नासा वाले इसकी फॉर्मूला नहीं बताते, ऐसा सुना है ।)

मुख्य रूप से पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य जब सीधी लाइन में आते हैं, तब अमावस होती है, अर्थात् सूर्य और चन्द्र के बीच का कोना शून्य डिग्री हो, वह अमावस है । क्योंकि तीनों के सीधी रेखा में आने के कारण सूर्य द्वारा प्रकाशित होने वाला चन्द्र का भाग सूर्य की ओर होता है, और अप्रकाशित भाग पृथ्वी की ओर होता है, इसलिए पृथ्वी से वह परप्रकाशित चन्द्र दिखाई नहीं देता । जैसे–जैसे पृथ्वी से सूर्य-चन्द्र का कोना १२ डिग्री, २४, ३६ इस प्रकार १८० डिग्री होता है वैसे–वैसे चन्द्र सूर्य की किरणों का पृथ्वी पर अधिक से अधिक परावर्तन करता है और क्रमशः सुदी-१, सुदी-२ से सुदी-१५ होती है । फिर १८१ डिग्री से ३६० डिग्री का कोना बनने से वदी-१, वदी-२ से वदी अमावस्या होती है । उपरान्त **चन्द्र की भ्रमण कक्षा (ORBIT या गतिपथ) कुछ लम्बगोल है । इसके अतिरिक्त पृथ्वी और सूर्य का गुरुत्वाकर्षण चन्द्र को लगता है, इसलिए चन्द्र की गति धीमी या तेज होती है, इसलिए १२ डिग्री का समय निकालने में साधिक २१ घण्टे से साधिक २७ घण्टे लगते हैं, इसलिए तिथि माप निश्चित नहीं है ।** ३० तिथि=१ चन्द्र मास (Sinodic Month), जिसका वास्तव में माप २९ दिन १२ घण्टे ४४ मिनिट होता है, किन्तु गुरुत्वाकर्षण बल आदि उपरोक्त वर्णित कारणों से यह माप २९ दिन १८ घण्टे तक या २९ दिन ८ घण्टे तक हो सकता है । इस प्रकार **नक्षत्र मास (साइडिरीयल) २७ दिन ७ घण्टे**

४१ मिनिट के आस–पास और चन्द्र मास (सायनोडिक) २९ दिन १२ घण्टे ४४ मिनिट के आस–पास का होता है ।

इन दोनों में भेद होने का कारण यह है, कि पृथ्वी के किसी एक निश्चित बिन्दु से तथा सूर्य के साथ किसी निश्चित कोने से चन्द्र का शुरू हुआ परिभ्रमण साधिक २७वें दिन उसी निश्चित बिन्दु पर आता है, किन्तु पृथ्वी भी सूर्य के आस–पास घूमती होने के कारण अपने निश्चित स्थान से आगे बढ़ चुकी होती है, इसलिए पृथ्वी और चन्द्र के निश्चित स्थान साधिक २७वें दिन इकट्ठा होने पर भी तिथि हेतु आवश्यक सूर्य और चन्द्र के बीच के कोने के निश्चित बिन्दु उस समय इकट्ठा न होकर २ दिन बाद एकट्ठा होते हैं, इसलिए तब तक साधिक २९ दिन बीत जाते हैं, जिसे चन्द्रमास कहते हैं । इसकी **काल्पनिक** आकृति (Not to be scalled) इस प्रकार है :–

आकृति १ : नक्षत्र मास–चन्द्र मास के मध्य भेद

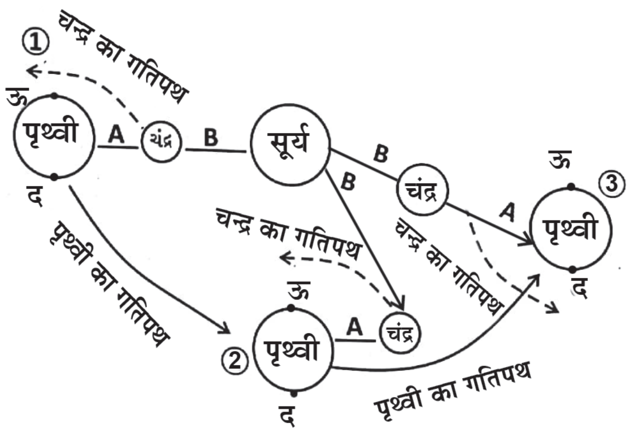

- A = पृथ्वी – चन्द्र का निश्चित बिन्दु =
  प्रस्तुत में विषुववृत = प्रस्तुत में नक्षत्र मास = साधिक २७ दिवस
- B = चन्द्र–सूर्य के कोने का निश्चित बिन्दु =
  0 डिग्री = प्रस्तुत में चन्द्र मास = साधिक २९ दिवस

आकृति २ : सूर्य के साथ चन्द्र के कोने, इसलिए बनने वाली तिथियाँ

नोंट : १) सूर्य के आस–पास पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर अपनी धुरी पर घूमती है ।

२) चन्द्र भी पृथ्वी के आस–पास पश्चिम से पूर्व घूमता है ।

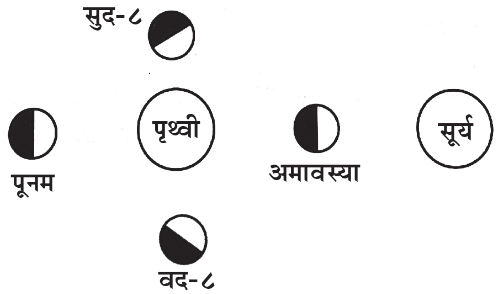

(b) जिनमत के अनुसार :– तिथि होने से जुड़े मुख्य कारण

(१) चन्द्र के विमान से ठीक नीचे स्थित कृष्ण प्रभा वाले राहु का विमान चन्द्र के विमान को अपनी कृष्ण प्रभा से ही ढकने और खोलने का कार्य करता है। अर्थापत्ति या अवकाशी निरीक्षण से यह तय है, कि राहु का विमान चन्द्र के दक्षिणी ओर (लवण समंदर की ओर) रहकर पूर्व से पश्चिम को चंद्र के उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव को ढकता है, और पूर्व से पश्चिम चन्द्र के उत्तरध्रुव से दक्षिणध्रुव को क्रमश: खोलने का कार्य करता है ऐसा पृथ्वी पर से दृश्यमान होता है। यह ढकने और खोलने का समय निश्चित है–२३ घण्टे ३६ मिनिट। इस प्रकार ३० तिथि पूर्ण होने पर चन्द्र मास = सायनोडिक मास = २९ दिन १२ घण्टे २४ मिनिट का समय होता है।

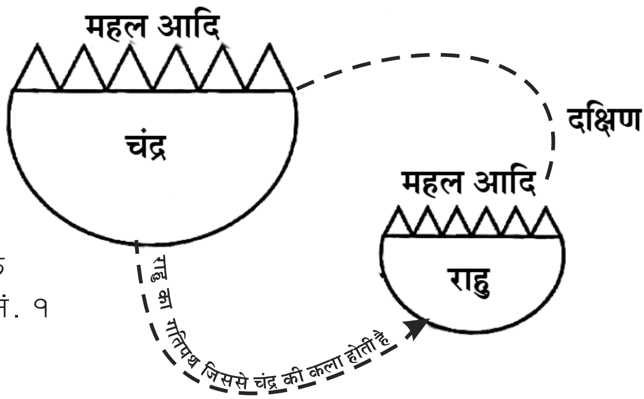

विशेष जानकारी के लिए देखिए चित्र नं. १

(२) जैसे राहु के विमान की प्रभा से चन्द्र–बिम्ब का ढकने और खुलने का समय तय है वैसे ही इसके साथ ही सूर्य की तुलना में चन्द्र ५१ मिनिट धीमे होने के कारण रोज सूर्य–चन्द्र के बीच का अन्तर प्राय: ५१-५१ मिनिट बढ़ता रहेगा, जम्बूद्वीप में दो सूर्य-चन्द्र होने के कारण एक सूर्य और एक चन्द्र का कुल विचरण क्षेत्र मात्र १८० डिग्री होता है, इसमें रोज ५१-५१ मिनिट = ६ डिग्री का अन्तर बढ़ता रहता है।

इस प्रकार दोनों एक ही मण्डल (ORBIT) में, एक राशि और एक नक्षत्र में आते हैं तब अमावस्या होती है, दोनों के बीच का अन्तर ६ डिग्री बढ़े तो सुदी-१, सुदी-२ आदि होते हैं और दोनों के बीच का अन्तर ९० डिग्री हो तो पूर्णिमा होती है। फिर दोनों का अन्तर ९६ डिग्री, १०२ डिग्री हो तो वदी-१, वदी-२ आदि होते हैं और यह अन्तर १८० डिग्री हो तो अमावस्या होती है। हाँ ! इसी समय दूसरे सूर्य और पहले चन्द्र, तथा पहले सूर्य और दूसरे चन्द्र के बीच शून्य डिग्री का अन्तर होता है।

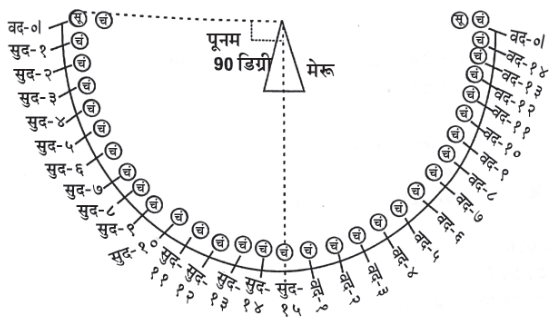

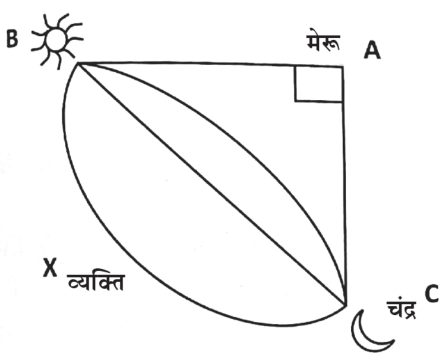

उपरोक्त आकृति के अनुसार मेरू पर्वत की (A) अपेक्षा से (B) सूर्य और (C) चंद्र के बीच ९० डिग्री का कोना है। किन्तु प्रकाश क्षेत्र की अपेक्षा से या पृथ्वी के जीयोसेंट्रिक (केन्द्र बिन्दु) की अपेक्षा से X व्यक्ति को B (सूर्य) और C (चन्द्र) के बीच **½ Round = १८० डिग्री होता है जो आधुनिक खगोल के मतानुसार टैली हो जाता है।**

इस प्रकार चन्द्र मास पूर्ण होने में लगभग २९ दिन १२ घण्टे २४ मिनिट का समय लगता है।

आधुनिक खगोलशास्त्र और जिनमत के खगोल के विषय के निर्णयों में कितनी साम्यता है, यह बताने हेतु उपरोक्त जानकारी पर्याप्त है।

–दोनों पक्ष सूर्य–चन्द्र आदि का पृथ्वी के दृष्टिकोण से पूर्व से पश्चिम में उदय होना मानते हैं।

–दोनों पक्ष दिन (अहोरात्रि) को प्रायः २४ घण्टे का मानते हैं।

–दोनों पक्ष सूर्य–चन्द्र का गतिपथ लगभग ५१० योजन विस्तार में मानते हैं। (जिनागमों में तो यह माप स्पष्ट है, आधुनिक मत से कर्क वृत्त और मकर वृत्त के बीच के अन्तर को उत्सेधांगुल के अनुसार विचार करें तो लगभग ५००-५१० योजन होता है।)

–दोनों पक्ष सूर्य, चन्द्र और ग्रह का राशि (नक्षत्र) के साथ योग मानते हैं।

–जिनमत चन्द्र मास को लगभग २९ दिन १२ घण्टे २४ मिनिट का मानता है और आधुनिक यूरोपीय मत २९ दिन १२ घण्टे ४४ मिनिट का मानता है, इस प्रकार इसमें २० मिनिट का भेद माना है।

–दोनों पक्ष के नक्षत्र मास में लगभग १२ मिनिट का ही भेद है।

• जिनमत २७ दिन ७ घण्ट ३१ मिनिट मानता है,

–आधुनिक यूरोपियन मत २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनिट मानता है।

–दोनों पक्ष सूर्यग्रहण अमावस्या को और चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही मानते हैं।

–दोनों पक्षों के सूर्य वर्ष में १८ घण्टे का फर्क है।

• जिनमत सूर्य वर्ष ३६६ दिन का मानता है और आधुनिक यूरोपीय सूर्य ३६५ १/४ दिन का मानते हैं।

– मात्र आधुनिक खगोलशास्त्र नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग २४

घण्टे के आसपास का मानता है, जो जिनमतानुसार १२ घण्टे, २४ घण्टे और ३६ घण्टे का है। इस कारण जैन मुहूर्त और जैन ज्योतिषशास्त्र आज के मत से काफी अलग हो जाता है।

– जिनमत में तिथि का निश्चित माप २३ घण्टे ३६ मिनिट का बताया गया है, जबकि आधुनिक मत यह २१ घण्टे से २७ घण्टे तक मानता है, और इसीलिए वृद्धि तिथि आती है। इस कारण संघभेद, आराधना भेद और जिनाज्ञा भेद होता है। गीतार्थों को इन दो बातों में जिनमत का अनुसरण करने का निर्णय करना चाहिए, ऐसी विनती है। (जैन आगमिक गणित आधारित पंचांग प्रक्रिया में से साभार)

◆ इस प्रकार पता चलता है, कि आधुनिक (यूरोपीय) गणित के अनुसार तिथि = **पृथ्वी से चन्द्र और सूर्य का निश्चित कोना।** क्योंकि वे चन्द्र को परप्रकाशित मानते हैं और सूर्य–चन्द्र का कोना रोज बदलने के कारण चन्द्र पर सूर्य की किरणों का संपात भी बदलता है, इसलिए तदनुसार चन्द्रबिम्ब छोटा–बड़ा होता है और तिथि की रचना होती है। उपरान्त, पृथ्वी सूर्य के आसपास और चन्द्र पृथ्वी के आसपास **लम्बगोल आकार में घूमता है,** और सूर्य एवं पृथ्वी केन्द्र में न रहकर थोड़े Side पर रहते हैं, यानि कि इस प्रकार की आकृति बनती है :– (आकृति अंदाजित है)

१. सूर्य के आसपास पृथ्वी का परिभ्रमण   २. पृथ्वी के आसपास चन्द्र का परिभ्रमण

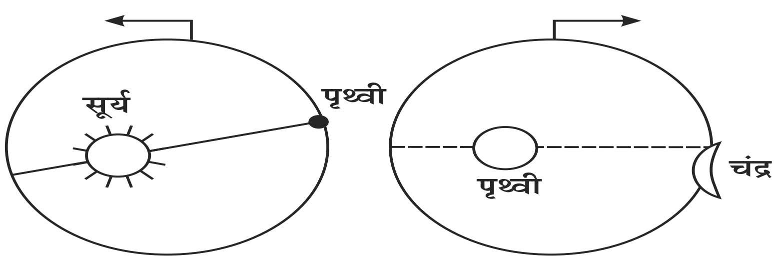

◆ अतः पृथ्वी जब सूर्य के निकट हो तो गुरुत्वाकर्षण की प्रचुरता से पृथ्वी की गति बढ़ती है और जब सूर्य से दूर जाए तो गति घटती है, इसलिए महीने छोटे-बड़े होते हैं और सूर्य का राशि–नक्षत्र के साथ संयोग भी छोटा–बड़ा होता है।

गति बढ़ने के कारण निश्चित अन्तर जल्दी पार हो जाता है, इसलिए

महीना और नक्षत्र के साथ योग भी जल्दी पूरा हो जाता है। गति कम होने के कारण निश्चित अन्तर देरी से तय होती है, इसलिए महीना और नक्षत्र के साथ योग लम्बे समय तक चलता है।

◆ इसी प्रकार चन्द्रभी पृथ्वीके समीप आता है तब गुरुत्वाकर्षण के कारण उसकी गति बढ़ती है, इसलिए १२ अंश का अन्तर जल्दी पूरा हो जाता है, इसलिए तिथि छोटी होती है, और जैसे–जैसे चन्द्र पृथ्वी से दूर जाता है तो गुरुत्वाकर्षण घटने के कारण उसकी गति घटती है, इसलिए १२ अंश का अन्तर धीमे व्यतीत होता है और तिथि बड़ी बनती है।

इसी प्रकार नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग भी छोटा-बड़ा होता है।

उदाहरण के लिए, २०१९, २०२० के चन्द्र मास के पर्व में (पूर्णिमा–अमावस्या में) चन्द्र की गति धीमी–तेज होने के कारण होने वाला माप नीचे दिया गया है, जिससे तिथि का छोटा–बडा होने वाला माप जाना जा सकता है:–

	सबसे तेज गति कला–विकला	माह	सबसे धीमी गति कला–विकला	माह
१.	४३५-३६	का.व.१२ २३-११-१९	३५५-१८	का.सु.९ ६/११/१९
२.	४२५-४०	मा.व.८ १९-१२-१९	३५५-५४	मा.सु.८ ४/१२/१९
३.	४३६-३२	पो.व.३ १३/१/२०	३५५-५७	पो.सु.७ २/१/२०
४.	४५०-५७	महा.व.१ १०/२/२०	३५५-३२	म.सु.५ ३०/१/२०
५.	४५९-५८	फा.व.१ १०/३/२०	३५५-२९	फा.सु.४ २७/०२/२०
६.	४६०-२६	चै.सु.१४ ७/४/२०	३५४-२१	फा.व.०) २४/३/२०

७.	४५२-४५	वै.सु.१४ ६/५/२०	३५५-३१	चै.व.१३ २०/४/२०
८.	४४०-१५	जे.सु.१२ ३/६/२०	३५५-४०	वै.व.११ १८/५/२०
९.	४२८-२८	आ.सु.९ २९/६/२०	३५६-१६	जे.व.९ १४/६/२०
१०.	४३१-१५	श्रा.सु.४ २४/७/२०	३५६-२३	अ.व.७ १२/७/२०
११.	४४३-४९	भा.सु.३ २१/८/२०	३५५-३९	श्रा.व.६ १०/८/२०
१२.	४५४-४३	अधिक आ.सु.१ १८/९/२०	३५४-४१	भा.व.४ ६/९/२०
१३.	४५९-३०	अधिक आ.व.०)) १६/१०/२०	३५४-३८	अधिक आ.व.२ ४/१०/२०
१४.	४५६-०४	आ.व.१४ १४/११/२०	३५५-२१	आ.सु.१५ ३१/१०/२०
१५.	४४५-१६	का.व.१३ १२/१२/२०	३५५-०३	का.सु.१२ २७/११/२०

• ई.स. २०२० की २१/८ से २०/९ तक की तिथियों का समयान्तराल...

चन्द्र की गति बढ़ने से (तिथि का समयान्तराल) घटता है, चन्द्र की गति घटने से (तिथि का समयान्तराल) बढ़ता है....

उदा.	दिनांक	तिथि	चंद्र की गति सुबह ५.३० बजे		तिथि का समयान्तराल	विशेष
			कला	विकला	क. मि.	
१.	२१/८/२०	भा.सु.३	४४३	४९	२०:५१	गति अधिक तिथि छोटी
२.	२२/८/२०	भा.सु.४	४४१	५६	२०:५४	गति कम तिथि बडी
३.	२३/८/२०	भा.सु.५	४३६	४५	२१:०७	"
४.	२४/८/२०	भा.सु.६	४२९	२०	२१:२७	"
५.	२५/८/२०	भा.सु.७	४२०	५०	२१:५१	"
६.	२६/८/२०	भा.सु.८	४१२	१३	२२:१८	"
७.	२७/८/२०	भा.सु.९	४०४	०५	२२:४६	"
८.	२८/८/२०	भा.सु.१०	३९६	४४	२३:१३	"
९.	२९/८/२०	भा.सु.११	३९०	१४	२३:३९	"
१०.	३०/८/२०	भा.सु.१२	३८४	२३	२४:०४	"
११.	३१/८/२०	भा.सु.१३	३७९	००	२४:२७	"
१२.	१/९/२०	भा.सु.१४	३७३	५४	२४:५०	"
१३.	२/९/२०	भा.सु.१५	३६९	०३	२५:१३	"
१४.	३/९/२०	भा.व.१	३६४	२९	२५:३५	"
१५.	४/९/२०	भा.व.२	३६०	२५	२५:५७	"
१६.	५/९/२०	भा.व.३	३५७	१०	२६:१४	"
१७.	६/९/२०	भा.व.४	३५५	०७	२६:२८	"
१८.	७/९/२०	भा.व.५	३५४	४४	२६:३२	गति कम तिथि बडी
१९.	८/९/२०	भा.व.६	३५६	२१	२६:२४	गति अधिक तिथि छोटी
२०.	९/९/२०	भा.व.७	३६०	२१	२६:०३	"
२१.	१०/९/२०	भा.व.८	३६६	५८	२५:२९	"

२२.	११/९/२०	भा.व.९	३७६	१३	२४:४५	"
२३.	१२/९/२०	भा.व.१०	३८७	५८	२३:५४	"
२४.	१३/९/२०	भा.व.११	४०१	३८	२३:०२	"
२५.	१४/९/२०	भा.व.१२	४१६	१८	२२:१३	"
२६.	१५/९/२०	भा.व.१३	४३०	३४	२१:३०	"
२७.	१६/९/२०	भा.व.१४	४४२	४७	२०:५८	"
२८.	१७/९/२०	भा.व.०)	४५१	१३	२०:३३	"
२९.	१८/९/२०	अधिक आ.सु.१	४५४	४३	२०:२०	गति अधिक तिथि छोटी
३०.	१९/९/२०	आ.सु. २	४५२	५५	२०:२१	"
३१.	१९/९/२०	आ.सु.३	–		२०:२९	आ.सु.३ क्षय तिथि है। जिसे माप आ.सु.१ तथा आ.सु.२ से बडी है। फिर भी क्षय तिथि है।
३२.	२०/९/२०	आ.सु.४	४४६	२६	२०:४८	

अब इस सन्दर्भ में आज कोई भी खुद गणित नहीं करता और मात्र **Swiss EPhemeris के data जो L.L.R. System से DE-430, 431 से (जिसकी Accuracy 100% नहीं है, ये बात वे लोग खुद बताते है) तैयार होते हैं, उसे Software के माध्यम लौकिक पंचांग की परिभाषा में convert किया जाता है,** उसमेसे जन्मभूमि, गायत्री, सीमंधर प्रत्यक्ष पंचांग आदि सब पंचांग तैयार होते हैं। यहाँ दीइ हुइ उपरोक्त जानकारी भी जन्मभूमि के आधार तैयार की गई है।

d) आश्चर्य तो इस बात का है, कि खुद नासा अपनी Website पर चन्द्र मास की मीन वैल्यू २९.५३०५८७ दिन दिखाता है, जो १२ महीने

में से (कार्तिक, मार्गशीर्ष, आसोज) किसी के भी माप के तुल्य नहीं है। कुछ कम–ज्यादा ही सभी महीने होते हैं। उपरान्त उन १२ महीनों की Total को १२ से भाग देने पर भी यह मीन वैल्यू नहीं आती। इसलिए प्रश्न उठता है, कि १२ महीनों का जो माप नासा देते है वह सही है या जो मीन वैल्यू देता है वह सही है ? मीन वैल्यू गलत होना सम्भव नहीं है, क्योंकि उस पर ही तो गणित चल रहा है।

e) यदि सभी महीने छोटे–बड़े हों, सभी तिथियाँ छोटी-बड़ी हो, क्योंकि चन्द्र का पृथ्वी के आस–पास का गतिपथ प्रतिदिन बदलाता है, तो नासा ३६००० वर्ष का सभी ग्रहों का, सूर्य का, चन्द्र का रोज–रोज का आँकड़ा कैसे दे सकता है ?

जो घटना अवकाश में ५, १०, १५ हजार वर्ष के बाद घटने वाली है, उसका अनुमान किसी गणित पर ही तय हो सकता है, अन्यथा नहीं। तो क्या वह Fix गणित है ? सब कुछ परिवर्तनशील है, तो Fix गणित नहीं हो सकता, और ३६००० वर्ष का Data भी नहीं हो सकता। किन्तु अभी तो लम्बे समय का Data मिलता है, इसका अर्थ यह है कि गणित Fix है। अन्य पदार्थों के गुरुत्वाकर्षण से भविष्य में जो गति में बदलाव होने वाला है, वह भी Fix ही हुआ। शास्त्र पाठ भी Fix गणित दर्शाते हैं, मात्र उसमें हर ४००/४०० वर्ष में आवश्यक संस्कार करने होते हैं। या फिर वैज्ञानिक परिभाषा में अन्य अवकाशीय पदार्थों के गुरुत्वाकर्षण बल आदि के कारण होने वाले बदलाव को यदि जोड़ा जाए तो सत्य सामने आ सकता है।

f) आधुनिक खगोलशास्त्री बताते हैं, कि गुरुत्वाकर्षण के कारण दिन, तिथि, मास आदि का कोई माप fix नहीं रहता, उसमें घट–बढ़ होती है, तो फिर ५, १० या १५ हजार वर्षों बाद किसका कितना गुरुत्वाकर्षण लगेगा इसका आज हमें पता ही नहीं, तो फिर ३६००० वर्ष का डेटा swiss Ephemeris ने किस प्रकार दिया ? और यदि गुरुत्वाकर्षण कब, किसका और कितना लगता है, इसका कोई समीकरण हो, तो फिर यह गणित तो Fix ही हुआ, और वे फार्मूला तो तैयार मिलते ही हैं, जिसकी छानबीन करने से हम स्वयं भी यह तय कर ही सकते हैं। यहाँ खास बात याद रहे, कि DE431 के आधार पर होने वाले लम्बी अवधि के खगोलीय डेटा में एक्यूरेसी

कम होती है, यह बात वे लोग स्वयं लिखते हैं, जिसकी जानकारी आगे बातएँगे।

२) जिनागमों की दृष्टि से :

जिनागमों के अनुसार तो तिथि का नियामक सूर्य नहीं, बल्कि राहु और चन्द्र है। तो इन दोनों का (विज्ञान और जिनागम का) समन्वय कैसे करें ?

a) राहु तो चन्द्र का परिभ्रमण **८८५ $\frac{३०}{६२}$ मुहुर्त** = २९ $\frac{३२}{६२}$ दिन में पूर्ण करता है, इसलिए चन्द्र मास उत्पन्न होता है। और उसे ३० से विभाजन करने से **१ तिथि = १ चंद्र दिन = राहु की दैनिक गति आती है।**

ता कहं ते चंदमसो वड्ढोवड्ढी आहितेति वदेज्जा ? ता **अट्ठ पंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स,** ता दोसिणापक्खाओ अन्धगारपक्खमयमाणे चंदे **चत्तारि बायालसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स** जाइं चंदे रज्जति तं. पढमाए पढमं भागं बितियाए बितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं चरिमसमए चंदे रत्ते भवति, अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरते य भवति, इयण्णं अमावासा, एत्थ णं पढमे पव्वेअमावासे, ता अंधकार पक्खोतो णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे **चत्तारे बाताले मुहुत्तसते छातालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स** जाइं चंदे विरज्जति, तं. पढमाए पढमं भागं बितियाए बितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं चरिमे समये चंदे विरत्ते भवति, इयण्णं पुण्णिमासिणी, एत्थ णं दोच्चे पव्वे पुण्णिमासिणी (सूत्र ७९ सूर्य प्रज्ञप्ति) (चंद्र प्रज्ञप्ति १३ का प्राभृत)।

अतः दोनों का मेल कैसे करें ? एक ओर शास्त्रवचन और दूसरी ओर प्रत्यक्ष आकाश। चन्द्र की निश्चित कला खुलते-ढकते चन्द्र बिम्ब की बढ़त घटत होती है, जो आँखों से दिखाई देती है, तो समान माप वाली जिनागमोक्त तिथि और आधुनिक खगोल की घट–बढ़ के माप वाली आज की तिथि का कैसे मेल किया जाए ?

दोनों के बीच समन्वय
(समाधान-१)

आधुनिक यूरोपिय मतानुसार, यदि
सूर्य=a, पृथ्वी=b, और चंद्र=c हो, तो...

अतः, चन्द्र (c) पृथ्वी (b) के आसपास घूमती है और चंद्र (c) युक्त पृथ्वी (b) सूर्य (a) के आसपास सतत घुमती है।

जबकि जिनमत के अनुसार **मेरू पर्वत=a, चन्द्र=b, और राहु=c हो,**
तो राहु (c) चंद्र (b) के आसपास घूमता है
राहु (c) युक्त चंद्र (b) मेरू (a) के आसपास सतत घुमता है।

अतः आधुनिक मतानुसार c = **चन्द्र** और
जिनमतानुसार c = **राहु** है, अतः

आधुनिक मत के अनुसार चंद्र की जो गति **जो गणित या जो गतिपथ बताया गया है, वह जिनमत के अनुसार राहु की गति, राहु का गणित या राहु का गतिपथ हो सकता है** ऐसा मेरा निजी विचार है।

उपरान्त यहाँ खास ध्यान देने की बात यह है कि **जिनमत निश्चित समय (काल)** बीतने पर होने वाली **चन्द्र बिम्ब की बढ़–घट को तिथि** निर्माण मानता है, तो **आधुनिक मत निश्चित अन्तर (क्षेत्र)** बीतने पर होने वाली **चन्द्र बिम्ब की बढ़–घट को तिथि** निर्माण मानता है। किन्तु दोनों में से कोई भी मत चन्द्र बिम्ब की **निश्चित बढ़–घट को तिथि** के रूप में प्रतिपादित नहीं करता।

सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ठाणांग सूत्र आदि में निर्दिष्ट जैन मत की मान्यता के अनुसारः–

१) तिथि की वृद्धि कभी नहीं होती,

२) तिथि अहोरात्रि से छोटी ही होती है,

३) इसलिए तिथि का क्षय अवश्य आएगा ही (क्योंकि चन्द्र मास – कर्म मास का मेल करना होता है), अतः

जिनमत के पालन हेतु वृद्धि तिथि नहीं आनी चाहिए, और तिथि का माप समान आना चाहिए और वह भी अहोरात्रि से छोटा होना चाहिए।

किन्तु ऐसा करने जाएँ तो प्रत्यक्ष मान्यता वालों के साथ मेल नहीं होता। हर पांच वर्ष में लगभग २० से २१ घण्टे, अर्थात् लगभग एक दिन का फर्क पड़ता है, जो नीचे दिए अनुसार है।

जिनमतानुसार	आधुनिक मतानुसार	फर्क
चन्द्रदिन लगभग २३ घ. ३६ मि.	अनिश्चित, २० से २७ घण्टे के बीच	अनिश्चित
चन्द्रमास २९ दिन १२ घण्टे २३ मि.= २९.५१६१ दिन	२९ दिन १२ घण्टे ४४ मि. =२९.५३०५ दिन	लगभग २० मिनिट
चन्द्र वर्ष ३५४ दी. ४ घण्टे ३८ मि.= ३५४.९३ दिन	३५४ दी. ८ घण्टे ४८ मि. =३५४.३६७ दिन	२५० मि. =४ घण्टे १० मि.

नोट : उपरोक्त आधुनिक मत के माप भी अनुमानित हैं।

अब, इस चन्द्र वर्ष के लगभग **२५० मिनिट के फर्क को प्रतिदिवस में Adjust करें, तो रोज की तिथि में लगभग ४२ सेकिण्ड का बढ़ोतरी होगी।** और इस प्रकार यह बढ़त रोज जोड़ते जाएँ तो वर्तमान खगोल के साथ वर्षों–महीनों के बाद लगभग टैली हो जाएगा। जिस वर्ष में एक दिन का फर्क पड़ता था और वह आगे से आगे चलता था, वह मात्र कुछ घण्टों का ही हो जाएगा और आगे नहीं बढ़ेगा।

इसलिए जिनमत और आधुनिक खगोल, दोनों का समन्वय हो, **तो वृद्धि तिथि नहीं आएगी क्योंकि तिथि का माप**

२३ घण्टे ३६ मिनिट ४६ सेकिण्ड + ४२ सेकिण्ड =

२३ घण्टे ३७ मिनिट २८ सेकिण्ड होगा, जो अहोरात्रि (२४ घण्टे) से छोटा ही है।

इस प्रकार तिथि का माप भी समान हो गया, इस पद्धति से भी समन्वय हो सकता है । नक्षत्र मीमांसा नामक मेरी पुस्तक के पेज ५७ पर **``शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार और प्रत्यक्ष के साथ मेल करते हुए पंचांग कैसे बनता है ?'' इस शीर्षक में लिखे मुद्दों में शास्त्रपाठों के सैद्धान्तिक (निश्चय) तथा गाणितिक (व्यवहार) विभाग करके गाणितिक शास्त्रपाठों का संस्कार करना शास्त्रीय है, ऐसा बताया है, वह आप स्वयं पढ़कर जान लें ।** इस पद्धति के अनुसार पर्व तिथि की समाप्ति में ३-४-५ घण्टे का फर्क आता है, किन्तु ``उदयंमि जा सा'' नियम से व्यवहार में कभी–कभी दिन का फर्क हो सकता है । **नमूने के लिए देखिए परिशिष्ट–२ पेज १०६ पर** सत्यदेव शर्मा कृत सूर्य सिद्धान्त व्याख्या पुस्तक के पेज १०४ पर भी निश्चित संस्कार का उल्लेख है :–

ऋग्वदे (3/9/9) में 3339 देवों द्वारा अग्नि की पूजा करना कहा है। तथा तै. ब्रा. 1/5/2 में कहा है कि 'देवगृहा वै नक्षत्राणि'। 27 नक्षत्र में प्रत्येक को 124 भांशों में विभक्त किया गया है अत: 27×124 = 3348 तथा सूर्य एक तिथि में 9 भांग (चरण) भुक्त करता है। अत: 3348/9 = 372 तिथियाँ एक वर्ष में होती हैं। प्रतिवर्ष 372 तिथियों से पाँच वर्षों का एक युग प्रदर्शित होता है, लेकिन उपरोक्त ऋग्वेद श्लोक में जो 3339 संख्या कही है वह इससे भिन्न है। भिन्न नक्षत्र देवों की भांति ही यह मानें की वैदिक ऋषि प्रत्येक वर्ष में प्रत्येक भांश के लिए भिन्न देवता मानते थे। वर्ष में तिथियाँ 3339/9=371 मानी जाती थी। 19 वर्ष के एक चांद्र–सौर चक्र में 371 तिथियों के वर्ष होते हैं। इसका अर्थ हुआ की वैदिक ऋषि 19 वर्ष का चान्द्र–सौर चक्र जानते थे।

अत: वेदाङ्ग ज्योतिष में ऋग्वेद पाठ में प्रथम क्रान्तिवृत्त को 3348 भांश में विभक्त करके उसके पश्चात् 3339 भांश में 9 भांश कम करके परिवर्तित किया। वर्ष या क्रांतिवृत्त संख्या 3348 जो 27 नक्षत्र तथा 6 ऋतुओं की संख्या से विभाजित होनी चाहिये को वास्तविक 19 वर्ष के चक्र के लिए उपयुक्त बनाने के लिए, 1 तिथि = 9 भांश से उसको कम किया गया। इस गणना का उत्तर ऋग्वेद (3/9/9) से प्राप्त होता है।

तिथि को दिन के 124 वें भाग का 122 भाग (गुना) तुल्य माना हैं। एक सावन वर्ष 366 दिनों अथवा 372 तिथियों का मानने से इनमें शुद्धि करने की आवश्यकता थी जो 95वर्ष में की जाती थी जो 19 वर्ष का गुणक है। चान्द्रमास का एक दिन सूर्योदय काल पर स्थित तिथि अनुसार माना है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्य में तिथि के आरम्भ होने तथा समाप्त होने पर उसका क्षय माना जाता है। अत: इस पद्धति से चान्द्रदिवस का मान भिन्न होता है।

यहाँ कथित प्रकार से वेदाङ्गज्योतिषानुसार तथा आधुनिक अनुसार शुद्ध तिथि मान में अन्तर $\frac{354.367}{360} - \frac{122}{124} = \frac{5}{10000}$ से अल्प है। इससे 5 वर्षों के युग में एक दिवस से अल्प त्रुटि उत्पन्न होती है।

वैदिक ग्रन्थों तथा ज्यामितीय वेदियों के द्वारा सदियों पूर्व जो भारतीय यह जानते थे कि वर्ष 365 दिवस से अधिक तथा 366 दिवसों से अल्प होता है को, वेदाङ्गज्योतिष प्रतिपादित करता है। 1830 दिवस अथवा अधिक शुद्ध 1826 दिवसों का 5 वर्ष का युग जो निश्चित किया गया था उसका कारण यह था कि इसमें 61 का भाग जाता है। इससे यह पूर्वोक्त $\frac{122}{124} = \frac{61}{62}$ = तिथि मान की तुल्यता अनुरूप सिद्ध होती है। अतः चन्द्रमा की गति के लिए वेदाङ्गज्योतिष शुद्ध था। 1830 दिवसों के युग में चन्द्रोदय इससे 62 अल्प अर्थात् 1830–62 = 1768 कहे हैं जिसे 27 नक्षत्र 67 बार एक युग में भुक्त होते हैं, जो युगदिवसों 1830 से 21 अल्प अर्थात् 1830–21 = 1809 हैं। अतः चन्द्रमा के उदय का मध्यम समय $\frac{1830}{1768}$ = 24 घंटे 50.4864 मिनिट होता है।

इस प्रकार प्रतिदिन के ४२ सेकिण्ड के संस्कार के बाद दोनों पक्षों में समन्वय होता है, उपरान्त यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी में भी उत्तीर्ण बनता है। इसका वर्णन करने से पूर्व पहले महत्त्वपूर्ण भूमिका समझते हैं :–

किसी भी ग्रह की सूर्य के आस–पास की भ्रमण कक्षा वृत्त नहीं परन्तु लम्बवृत्त होती है, ऐसा **केप्लर नामक खगोलशास्त्री** ने तय किया था। उपरान्त जिसके आस–पास ग्रह घूमते हैं, वह सूर्य उस लम्बवृत्त के मध्य में न होकर थोड़ा Side में होता है। वैसे भी लम्बवृत्त की दो नाभि (Centre Point) होते हैं। इसलिए एक ओर की कक्षा का भ्रमणपथ सूर्य के निकट होगा और दूसरी ओर का भ्रमणपथ सूर्य से दूर होगा। इसी पद्धत्ति से चन्द्र भी पृथ्वी के आस–पास लम्बवृत्त में, अर्थात् एक ओर की कक्षा का भ्रमणपथ पृथ्वी के निकट (Perigee Point) और दूसरी ओर का भ्रमणपथ पृथ्वी से दूर (Apogee Point) आए, इस प्रकार घूमता है। सबका (सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का) ग्रैविटी फोर्स दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करता है। ``बिग बैंग'' थ्योरी और ग्रैविटी की थ्योरी संयुक्त रूप से सभी ग्रहों की भ्रमणकक्षा को लम्बवृत्त (Eliptic) बनाने में कारणभूत है। भ्रमणकक्षा लम्बवृत होने के कारण चन्द्र की गति में बढ़त–घटत होती है, इस कारण से तिथियाँ छोटी–बड़ी होती हैं।

वैज्ञानिक द्रष्टिकोण से तिथि का माप छोटा–बड़ा होने का मुख्य कारण ग्रैविटी और लम्बवृत गतिपथ (=भ्रमणकक्षा) है ।

तो क्या जिनमत द्वारा निर्दिष्ट अवकाशीय पदार्थों की व्यवस्था और आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्दिष्ट अवकाशीय पदार्थों की व्यवस्था में सामंजस्य सम्भव हो सकता है ?

हाँ ! दोनों के बीच अत्यन्त वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण तरीके से शास्त्रपाठ का अर्थघटन करके मेल करना १००% सम्भव है । इससे पूर्व कुछ जानकारी ले लेते हैं ।

१) केप्लर नामक खगोलशास्त्री के दूसरे नियम के अनुसार सूर्य या पृथ्वी के आस–पास घूमते अवकाशीय पिण्ड भले ही लम्बवृत्त में, कभी धीमी कभी तेज गति से घूमते हों, किन्तु वे सब अपनी–अपनी भ्रमणकक्ष में **एक सरीखे समय में, एक सरीखे विस्तार = क्षेत्रफल = Area** तय करते हैं । **Kepler's second Law of Planetary motion. A radius vector joining any planet to the sun sweeps out equal areas in equal lengths of time.** अर्थात् (**a**) धीमी गति हो, तब १२ डिग्री का अन्तर बिताने में भले ही समय बढ़े, या तेज गति हो तब १२ डिग्री का अन्तर तय करने में भले ही समय घटे, अर्थात् **निश्चित समय में** यदि **गति धीमी** हो तो **कम डिग्री** अन्तर तय होगा और यदि **गति अधिक** होगी तो **अधिक डिग्री** अन्तर तय होगा, किन्तु

(b) क्षेत्रफल तो निश्चित समय में उतना ही पूर्ण होता है ।

उदाहरण :– निश्चित **२४ घण्टे में अन्तर ११ डिग्री या १३ डिग्री** तय हुआ होगा, किन्तु **दोनों का क्षेत्रफल तो समान ही होगा ।** इसकी आकृति इस प्रकार है :–

१. आधुनिक गणित के अनुसार पृथ्वी की सूर्य के आस-पास की लम्बवृत्त भ्रमणकक्षा

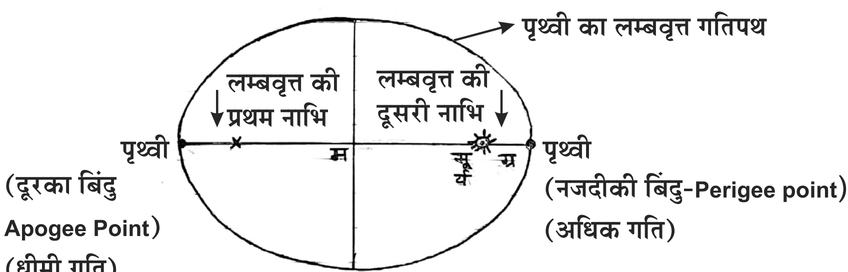

२. पृथ्वी के आस–पास चन्द्र की लम्बवृत्त भ्रमणकक्षा और समान समय में समान क्षेत्रफल की पूर्ति

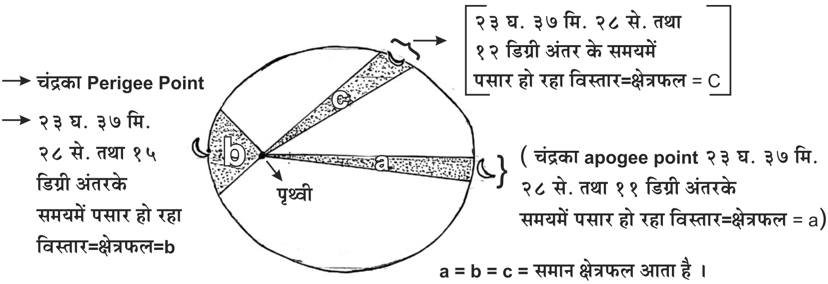

अर्थात् क्षेत्रफल (विस्तार) की दृष्टि से रोज समान अन्तर ही पूर्ण होता है ।

२) इसलिए शास्त्रीय गणित के अनुसार की तिथि के २३ घण्टे ३६ मिनिट या २३ घण्टे ३७ मिनिट (संस्कारयुक्त) समय में भी पृथ्वी के आस–पास चन्द्र (a) कोई भी दूरी से, या (b) कोई भी गति से भ्रमण करे तो भी **क्षेत्रफल समान ही (लम्बवृत्त भ्रमणकक्षा के विस्तार के $\frac{१२}{३६०}$ भाग तथा जैन मतानुसार $\frac{४}{६२}$ कला = क्षेत्रफल) तय होगा,** भले ही **सूर्य या चन्द्र के बीच १२ डिग्री का अन्तर पूर्ण हुआ हो या नहीं हुआ हो या अधिक पूर्ण हुआ हो ।**

अभी का हिन्दू गणित (नासा के वैज्ञानिक Data तथा Swiss Ephemeris का तिथि के साथ कोई लेना–देना नहीं है) चन्द्र का पृथ्वी के आस–पास के **गतिपथ में = भ्रमणकक्षा में = ORBIT = परिधि में=Circumference में सूर्य की अपेक्षा चन्द्र का स्थान जो १२-१२ अंश बढ़ता–घटता है, उसे तिथि मानता है ।**

• आकृतिः–३

चंद्र का गतिपथ=परिधि पर १२–१२ अंश का बढ़ता या घटता हुआ कोना=तिथि

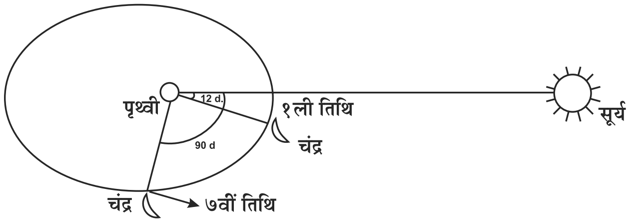

इस प्रकार चन्द्र का गतिपथ लम्बगोल और ग्रैविटी का फोर्स लगने के कारण **१२ अंश का गतिपथ** पूर्ण होने में २१ से २७ घण्टे का समय लग सकता है, इसलिए तिथि छोटी–बड़ी होती है, वृद्धि तिथि आती है। जबकि **वैज्ञानिक केप्लर** के अनुसार अवकाशीय घटना में मात्र गतिपथ, अर्थात् ORBIT यानि परिधि का जितना महत्त्व है, उससे अधिक महत्त्व उस गतिपथ पर चलने वाले किसी भी ग्रह, उपग्रह द्वारा तय होने वाले विस्तार, क्षेत्रफल यानि Area का है। इसलिए पृथ्वी के आस–पास के गतिपथ, अर्थात् भ्रमणकक्षा = ORBIT = परिधि पर घूमने वाले **चन्द्र, सूर्य की अपेक्षा निश्चित समय में जितना निश्चित स्थान** = **क्षेत्रफल** = Area **दूर या करीब जाता है** (उसके अनुसार तिथि का सृजन माना जा सकता है) इस प्रकार कुल **क्षेत्रफल या विस्तार के ३६० हिस्से** करके रोज के १२ हिस्से, इस प्रकार वह ३० दिन में १२ x ३० = ३६० हिस्सों का क्षेत्र पूर्ण करता है। अतः ३६० हिस्सों के समकक्ष क्षेत्र वाले **क्षेत्रफल के रोज के १२ भाग, १२ भाग...पूर्ण होते हैं और ये समान क्षेत्रफल वाले होते हैं और समान समय में पूर्ण होने वाले होते हैं।**

- **आकृतिः–४**

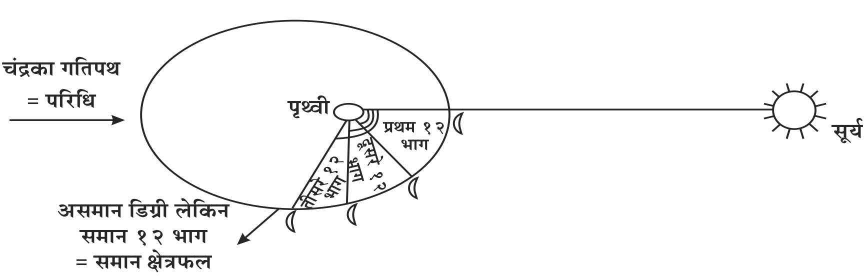

अतः **वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रचलित जन्मभूमि आदि के तिथि–गणित के दृष्टिकोण में फर्क है, यह स्पष्ट होता है।**

३) इधर जिनमत को भी १२ डिग्री के गणित के साथ कोई सीधा सम्पर्क नहीं है । उपरान्त (a) राहु चन्द्र के आस–पास **वृत्त या लम्बवृत्त गतिपथ में घूमता ह,** ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है, (b) राहु **समान या भिन्न गति से** चन्द्र बिम्ब को ढकता या खोलता है, इसका कोई उल्लेख मूल आगम पाठ में नहीं है, (c) राहु रोज चन्द्र के **समान विस्तार के** ही भाग को खोलता / बन्द करता है, ऐसा भी उल्लेख नहीं है । हाँ मात्र **४४२ $\frac{४६}{६२}$** मुहूर्त तक चन्द्र बिम्ब को खोलता है और **४४२ $\frac{४६}{६२}$** मुहूर्त तक चन्द्र बिम्ब को ढकता है, इसका वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति के मूल सूत्र ७९ में है, जो पहले बता दिया गया है ।

ता कहं ते चंदमसो...सूत्र ७९ सूर्यप्रज्ञप्ति–चन्द्रप्रज्ञप्ति

अर्थात् प्रथम दिन (**२९ $\frac{३२}{६२}$** मु.में) चन्द्र बिम्ब का प्रथम भाग खुलता या ढकता है,

दूसरे दिन (**२९ $\frac{३२}{६२}$** मु.में) चन्द्र बिम्ब का दूसरा भाग खुलता या ढकता है,

तीसरे दिन (**२९ $\frac{३२}{६२}$** मु.में) चन्द्र बिम्ब का तीसरा भाग खुलता या ढकता है,

१५ वें दिन (**२९ $\frac{३२}{६२}$** मु. में) चन्द्र बिम्ब का १५वां भाग खुलता या ढकता है, किन्तु उन सब **चन्द्र बिम्बों के भाग समान ही है,** ऐसा नहीं है । किन्तु चन्द्र बिम्ब के प्रत्येक भाग के खुलने / ढकने का **समय** (**२९ $\frac{३२}{६२}$** मु.) **समान ही है,** और हाँ, इसलिए प्रत्येक **दिन (तिथि को) खुलने या ढकने वाले भाग का क्षेत्रफल, यानि विस्तार** (राहु के प्रकाश का बढ़ने या घटने वाला रोज का नया क्षेत्र या विस्तार भी) **समान ही होता है ।**

a) यदि राहु का गतिपथ वृत्त हो तो चन्द्र बिम्ब के ४–४ भाग को तथा राहुकी (भ्रमण कक्षा के) समान प्रमाण के क्षेत्रफल को खोलता या ढकता है । **b)** यदि राहु का गतिपथ लम्बवृत्त हो भ्रमण कक्षा के कुल क्षेत्रफल के समान–समान भागों को रोज खोलता या ढकता है अर्थात् **६२ कला = कुल क्षेत्रफल, ४–४ कला = राहु द्वारा प्रतिदिन आवृत किया जाने वाला या खुलने वाला क्षेत्रफल या विस्तार ।** (वैज्ञानिक दृष्टि के अर्ध परिधि के

१८० भाग को ही यहाँ ६२ भाग या कला कहा गया है) इसी पदार्थ को थोड़ा अच्छे से समझते हैं ।

उपरोक्त कहे अनुसार जिनमत में सूर्य और चन्द्र का अन्तर १२–१२ डिग्री बढ़े, इस मान्यता का तिथि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । जिनमत तो राहु द्वारा होने वाली चन्द्र की कला = चन्द्र के बिम्ब को खोलने / ढकने को ही तिथि मानता है ।

यहाँ कला, यानी मात्र चन्द्र बिम्ब का ही निश्चित भाग नहीं, किन्तु कला यानि राहु बिम्ब का भी एक निश्चित भाग और राहु बिम्ब से चन्द्र बिम्ब तक के अवकाश के निश्चित भाग का भी समावेश है । इसे गणितीय भाषा में क्षेत्रफल, विस्तार या Area कहते हैं । अर्थात्, (१) आवृत करने वाला राहु बिम्ब, (२) नया आवरित होता / या मुक्त होता राहु और चन्द्र बिम्ब के मध्य का अवकाश, और

(३) आवृत या मुक्त होने वाला चन्द्र बिम्ब । इन तीनों का समूह कला, क्षेत्रफल या विस्तार है ।

संक्षेप में, **राहु का प्रकाशक्षेत्र कला है, मात्र चन्द्र बिम्ब का आवृत या मुक्त होना ही कला नहीं है ।**

शास्त्रपाठ भी यही कहता है । यहाँ निश्चित माप की कला की, अर्थात् क्षेत्रफल की बात है । एक दिन में राहुबिम्ब के १५ (निश्चित या अनिश्चित) भाग से चन्द्रबिम्ब के १५ (निश्चित या अनिश्चित कोई भी) भाग क्रमशः खुलते या ढकते हैं । इस प्रकार क्रमशः १५ चन्द्रदिवस में राहुबिम्ब के १५ भाग से चन्द्रबिम्ब के १५ भाग खुलते हैं, फिर १५ चन्द्रदिवस में राहुबिम्ब के १५ भाग से चन्द्रबिम्ब के १५ भाग ढकते हैं।

अर्थात् राहु जब समीप होता है तब गति अधिक होने के कारण चन्द्र बिम्ब अधिक (तेज गति से) ढकता / खुलता है । और जब राहु दूर होता है, तब गति धीमी होने के कारण चन्द्र बिम्ब कम (धीमी गति से) ढकता / खुलता है । किन्तु राहु का प्रकाश क्षेत्र (क्षेत्रफल) तो समान ही होता है ।

इस प्रकार २३ घण्टे, ३६ मि. या २३ घण्टे साधिक ३७ मि. (संस्कारित) के **निश्चित समय का १ भाग होता है, और वही तिथि होती है,** और कुल ३० भाग लेने पर चन्द्र मास या राहु का चन्द्र के आस–पास का परिक्रमण सम्पूर्ण

रूप से पूरा होता है। (राहु के गतिपथ को जानने के लिए देखिए चित्र नं.१)

मण्डल प्रकरण की गाथा-६८ की टीका में जीवाभिगमवृत्ति का पाठ दिया गा है : **``पन्नरसाभागेण य, चंदं पन्नरसमेव तं वरइ ।**

पन्नरसविभागेण य, तेणेव कमेणऽवक्कमइ ।।१।।''

व्याख्या–कृष्णपक्षे प्रतिदिवसं राहुविमानं स्वकीयेन पञ्चदशभागेन तं चंद्रमिति चन्द्रविमानस्य पञ्चदशमेव भागं `वृणोति' आच्छादयति। शुक्लपक्षे पुनस्तमेव प्रतिदिवसं पञ्चदशभागमात्मीयेन पञ्चदशभागेन `व्यतिक्रामति' मुञ्चतीत्यर्थः । **जीवाभिगमवृत्तिगतमिदम् ।।**

१२ डिग्री=तिथि, इस अर्थ को छोड़कर **क्षेत्रफल के** (विस्तार के) आधार पर तिथि को मापें तो **जिनमत द्वारा निर्दिष्ट तिथियुक्त अवकाशीय घटना** और **प्रत्यक्ष अवकाशीय घटना** इन दोनों में भेद का कोई स्थान नहीं रहेगा। निष्पक्ष गीतार्थों से इस सन्दर्भ में गम्भीर रूप से विचार करने की नम्र विनती है। अर्थापत्ति से ऐसा लगता है, कि राहु का गतिपथ भी लम्बवृत्त होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष आकाश में चन्द्रबिम्ब रोज समान Level पर खुलता/ढकता दिखाई नहीं देता। इसकी प्रतिदिन की जानकारी प्रतिशत की दृष्टि से https://svs.gsfc.nasa.gov/4768 इत्यादि वेबसाइट पर प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है :

Date	Phase	Distance (KM) Between Moon to Earth
March2020		
28	11.5%	402772
29	18.3%	399926
30	26.4%	396242
31	35.6%	391743
April 2020		
1	45.6%	386524
2	56.2%	380778
3	66.8%	374806
4	76.9%	369010
5	85.9%	363869
6	93.1%	359880
7	97.9%	357480

8	99.8%	356966
9	98.6%	358426
10	94.6%	361714
11	88%	366486
12	79.7%	372264
13	70.1%	378524
14	59.9%	384771
15	49.7%	390589
16	39.7%	395671
17	30.4%	399823
18	22%	402952
19	14.7%	405054
20	8.7%	406182
21	4.2%	406430
22	1.3%	405904
23	0.2%	404704
24	0.9%	402907
25	3.4%	400563
26	7.8%	397696
27	13.9%	394316
28	21.6%	390433

इसके उपरान्त चन्द्र ८८० योजन नीचे होने के कारण राहु के श्यामवर्ण वाले विमान पर (८८० यो. से ४ अंगुल नीचे नित्य राहु है) ८०० यो. ऊँचाई पर स्थित चन्द्र से ८० योजन नीचे स्थित सूर्य की किरणें गिर सकती हैं। शास्त्रों में सूर्य का उर्ध्व प्रकाश १०० योजन बताया गया है, इसलिए **राहु की परछाई चन्द्र बिम्ब पर गिरती होगी, ऐसा वैज्ञानिक कारण भी हो सकता है।** जिनमतानुसार तो राहु के रत्नों का श्याम वर्ण का प्रकाश ही चन्द्र को खोलता / ढकता है। उपरान्त **चन्द्र-राहु का स्थान और सूर्य का स्थान सतत घूमता होने के कारण प्रकाश के प्रक्षेपण परावर्तन की दिशा और अन्तर में भी बदलाव होता है,** इसलिए भी चन्द्र बिम्ब प्रति तिथि को (प्रतिदिन) थोड़ा-बहुत खुलता या ढकता है। किन्तु **प्रति तिथि को समान क्षेत्रफल तय करने में राहु को कोई नहीं रोक सकता, उपरान्त इस दृष्टिकोण को जिनागम और वैज्ञानिक दृष्टि का समर्थन**

होने के कारण तिथि का पाप Fix ही रहता है । उपरोक्त पदार्थ को समझने हेतु नीचे दी गई आकृतियाँ ध्यान से देखिए :

आकृति : १) मेरू के आस-पास भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर एवं अपनी-अपनी भ्रमण कक्षा में सतत घूमते सूर्य, चन्द्र और राहु के विमान

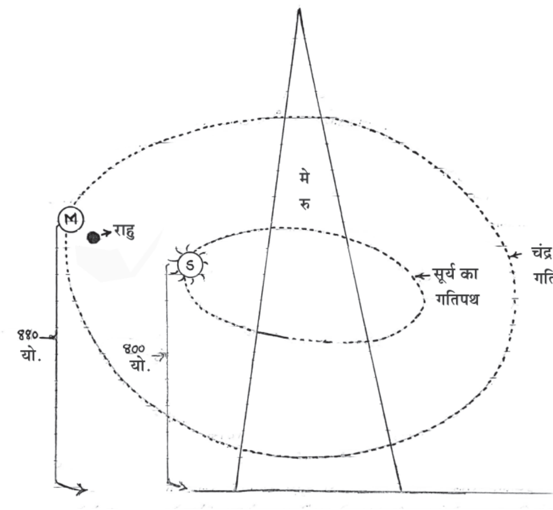

आकृति : २a) : १) वृत्त पथ पर चन्द्र के आस-पास घूमता राहु का विमान और इस कारण होने वाली चन्द्र की कलाओं=तिथि का निर्माण (यह काल्पनिक आकृति है)

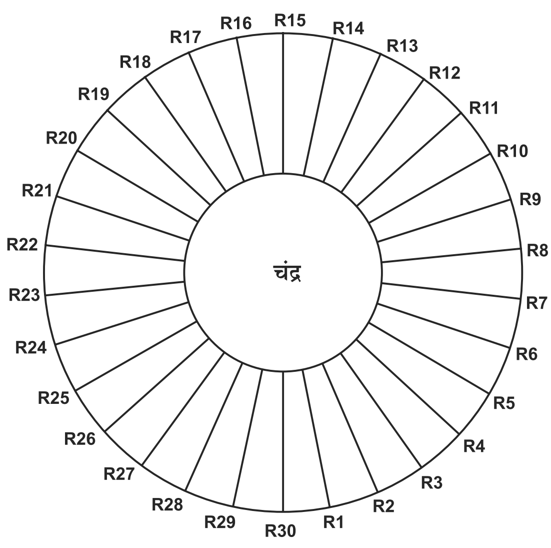

आकृति की समझ :–

a) R1 = R2 = R3 ... = R 30 = राहु द्वारा खोली / ढकी जाने वाली चन्द्र की कलाएँ=तिथि=२३ घ. ३७ मि. २८ से तिथि का माप ।

b) समान विभाग = समान क्षेत्रफल द्वारा तिथि का निर्माण ।

c) ☐ = बढता या घटता राहु का प्रकाश क्षेत्र = समान विभाग ।

d) R = राहु का विमान ।

e) R1 = वद-1, R1 + R2 = वद-2, R1 + R2...R15 = वद अमावस ।

f) R1...+ R15 - R16 = सुद-1, R1 + R15 - R16...+R30 = सुद पूनम् ।

आकृति : २b) : २) लम्ब वृत्त पथ पर चन्द्र के आस-पास घूमता राहु का विमान और इस कारण होने वाली चन्द्र की कलाओं=तिथि का निर्माण

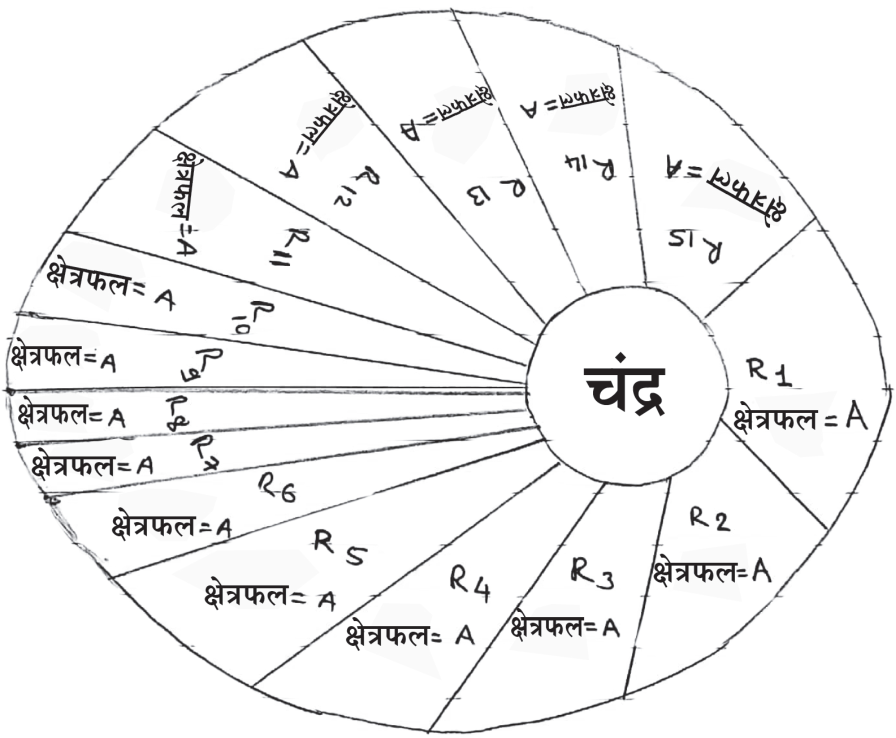

आकृति की समझ :–

a) R1 = R2 = R3 ... = R 30 = राहु द्वारा खोली / ढकी जाने वाली चन्द्र की कलाएँ=तिथि=२३ घ. ३७ मि. २८ से. तिथि का माप ।

b) R = राहु का विमान ।

c) ☐ = राहु का प्रकाश क्षेत्र = असमान विभाग ।

d) असमान विभाग = समान क्षेत्रफल = A द्वारा समान समय की तिथि का निर्माण ।

e,f) = आकृत्ति २a अनुसार

नोंध : जगह के अभाव से इधर १५ तिथियाँ ही दीखाई है ।

ऐसा ही प्रतिपादन ज्योतिष करण्डक के ४ थे प्राभृत में है–**एतावता हि कालेन चंद्रमंडलगतः पूर्वोदितप्रमाणः षोडशो भागो हानिं वृद्धिं चोपगच्छति वर्द्धते च, तत एतावनेव तिथेः परिमाणकालः ।**

अतः ज्योतिष करण्डक के अनुसार भी निश्चित कला खुलने / ढकने में लगने वाला अनिश्चित समय तिथि हो, ऐसा नहीं है, किन्तु निश्चित समय में खुलने या ढकी जाने वाली अनिश्चित कला (प्रचलित अर्थानुसार चन्द्र बिम्ब का भाग) तिथि है । जितना भाग खुलता या ढकता है, उतने परिमाण वाली अर्थात् चन्द्र बिम्ब के भाग या कलाओं जितनी निश्चित परिमाण वाली प्रत्येक तिथि बनती है ।

इसके अलावा जिनागामों के अनुसार सूर्य-चन्द्र ग्रहण के लिए भी नित्यराहु और पर्वराहु की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

१) चन्द्रग्रहण : सदैव पूर्णिमा के दिन ही चन्द्र ग्रहण होता है ।

a) वैज्ञानिक मान्यता : चन्द्र पर-प्रकाशित होने के कारण प्रकाश का मूल स्तोत्र सूर्य, और उससे प्रकाशित होने वाले चन्द्र के मध्य जब पृथ्वी आ जाए तब सूर्य का प्रकाश चन्द्र पर नहीं पहुँच पाता, और पृथ्वी की परछाई चन्द्र पर गिरती है, इसलिए चन्द्रग्रहण होता है ।

b) आगमिक मान्यता : चन्द्र स्व-प्रकाशित होने पर भी पर्वराहु का विमान पृथ्वी और चन्द्र के बीच आता है, तब पर्वराहु के कारण चन्द्र बिम्ब ग्रस्त हो जाता है, और चन्द्रग्रहण होता है । चन्द्र के आस-पास घूमता

नित्यराहु का विमान पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण चन्द्र बिम्ब को मुक्त करता है, इसलिए **नित्यराहु,** चन्द्र बिम्ब और पृथ्वी के बीच उपस्थित नहीं होता, और **पर्वराहु बीच में आने के कारण चन्द्रग्रहण होता है ।**

उपरान्त पूर्णिमा के दिन सूर्य और चन्द्र लगभग १८०° (आमने-सामने) की दूरी पर होते हैं, यह बात आगमिक और वैज्ञानिक, दोनों मान्यताओं से सिद्ध होती है । और चन्द्रग्रहण उत्कृष्ट से ३½ वर्ष में और सूर्यग्रहण ४८ वर्षों मे होता है, और जघन्य से दोनों ६ महीनों में होते हैं, ऐसा शास्त्र कहते हैं । (गा. ७७ मण्डल प्रकरण)

इस बात का भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ तथा प्रत्यक्ष के साथ मेल होता है ।

उदाहरण : १) ता. १०/१/२०२० पो.सु.-१५ (पूर्णिमा), २) ता. ५/६/२०२० जे.सु.१५, ३) ता. ५/७/२०२० अ.सु.-१५ पहले पांच महीनों में और बाद में एक महीने के अन्तर से ही चन्द्रग्रहण हुआ, किन्तु ये सब मांद्य चन्द्रग्रहण हैं, जिसमें चन्द्र बिम्ब मात्र अधिक Dark बनता है । कहीं भी लेशमात्र भी ग्रसित नहीं होता, या ज्योतिष के अनुसार इसकी कोई असर नहीं होती । इसलिए **एक के बाद एक ग्रहण होने पर भी (ग्रस्ति ग्रहण में) जघन्य से ६ महीनों का नियम नहीं टूटता ।**

२) सूर्यग्रहण : सूर्यग्रहण सदैव अमावस्या के दिन ही होता है ।

वैज्ञानिक मान्यता : सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्र आने से सूर्य ढक जाता है । चन्द्र पृथ्वी से नजदीक है, इस तुलना में सूर्य पृथ्वी से काफी दूर है । जैसे नजदीक स्थित छोटा व्यवधान भी (अन्तरायकारक पदार्थ) दूर स्थित बड़े द्रव्य (पदार्थ) को ढक देता हैं, वैसे ही छोटा चन्द्र भी पृथ्वी के निकट होने के कारण सूर्य को आच्छादित कर देता है । यही सूर्यग्रहण है ।

आगमिक मान्यता : सूर्य के नीचे घूमते पर्वराहु के विमान से सूर्यग्रहण होता है । अमावस्या होने के कारण चन्द्र नित्यराहु से और सूर्य पर्वराहु से ग्रसित होता है । वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार अमावस को सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी, तथा आगमिक मान्यता के अनुसार चन्द्र, नित्यराहु, सूर्य और पर्वराहु एक ही राशि-नक्षत्र में होते हैं, और सबके मध्य 0° का कोना होता है ।

आकृति a) चन्द्रग्रहण : पूर्णिमा के दिन

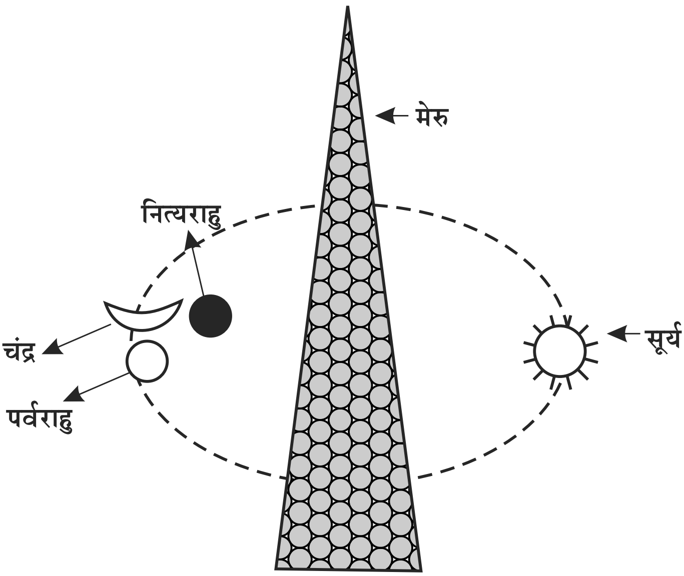

आकृति २) सूर्यग्रहण : अमावस्या के दिन

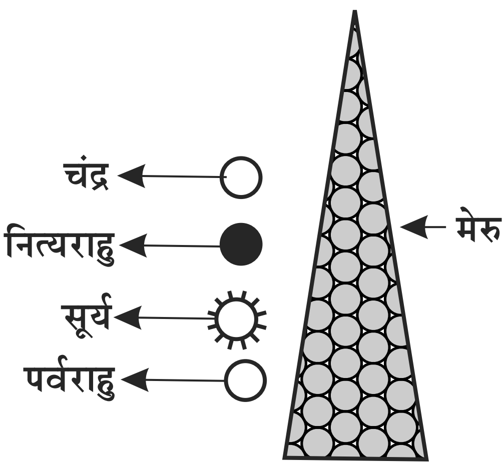

समाधान-२
क्या 'क्षये पूर्वा, वृद्धौ तथा उत्तरा' का अर्थ ऐसा कर सकते हैं ?

जैन पंचांग की प्रवृत्ति बंध हुई, लौकिक गणित को जैन मानके प्रवृत्ति शुरु हुई तबसे, (**``उदयंमि जा सा''** के नियम के अनुसार) उदित तिथि प्रमाणभूत है, फिर भी जब भी:

(a) कोई पर्व तिथि उदित तिथि न बने तो क्या किया जाए ?

(b) कोई पूर्व तिथि दो बार उदित तिथि बने तो क्या किया जाए ?

इसका अपवाद सूत्र बताते हुए **``क्षये पूर्वा वृद्धौ उत्तरा''** (उमास्वाति वाचक ने यह बताया है एसा भ्रम या किंवदन्ति है) बताया गया है, वर्तमान में **इस अनुसार** अर्थघटन होता है ।

a) अब ६१वीं चन्द्र तिथि ``उदयंमि जा सा'' के नियम से ६१वीं कर्म तिथि (कर्म दिवस) के सूर्योदय को स्पर्श करती है, इसलिए ६१वीं चन्द्र तिथि को ६१वीं कर्म तिथि (कर्म दिवस) में मनाएँगे । किन्तु ६२वीं चन्द्र तिथि का अंश मात्र भी ६२वीं कर्म तिथि (कर्म दिवस) के सूर्योदय को स्पर्श नहीं करती, इसलिए ६२ वीं चन्द्र तिथि न तो :

६१वीं कर्म तिथि (कर्म दिवस) में, और न ही

६२ वीं कर्म तिथि (कर्म दिवस) में मनाई जाएगी, किन्तु

यदि ६२वीं चन्द्र तिथि १२ पर्व तिथि में से कोई पर्व तिथि हो तो उसकी अखण्डता बनाए रखनी चाहिए और उसकी आराधना का लोप न हो, इस हेतु:

६१वीं चन्द्र तिथि उदित तिथि होने के बावजूद, ६१वें कर्म दिवस में इसे गौण करके ६२वीं चन्द्र तिथि उदित तिथि न होने पर भी ६१वें कर्म दिवस में ६२वीं चन्द्र तिथि अखण्ड रूप से माननी चाहिए तथा आराधना करनी चाहिए, यही **'क्षये पूर्वा'** है । (P.L. वैद्य के निर्णय में इस प्रकार लिखा है ।)

b) और यदि कोई पर्व तिथि दो बार उदित तिथि बने, यानि ६१वीं चन्द्र तिथि ६१ और ६२ दोनों कर्म तिथियों (कर्म दिवस) को स्पर्श करे, अर्थात् दोनों दिवस की उदित तिथि हो, तो ६१वीं चन्द्र तिथि ६१ या ६२ में से कौनसे कर्म दिन को मानें और आराधना करें ? तो इसका उत्तर है, **'वृद्धौ तथा उत्तरा ।'**

इस प्रकार 'उदयंमि जा सा' का अपवाद सूत्र 'क्षये पूर्वा वृद्धौ तथा उत्तरा' है । किन्तु यदि आज जिनमतानुसार पचांग निर्माण करना सम्भव हो, तो वृद्धि तिथि होगी ही नहीं, इसलिए 'वृद्धौ तथा उत्तरा' अपवाद सूत्र ही निर्विषयक बन जाता है, यह बात भूलनी नहीं चाहिए । फिर भी इस अपवाद सूत्र का उपयोग चालू रखा तो आज्ञाभंग, विराधना, अनवस्था, मिथ्यात्व आदि दोषों का कारक बन जाएगा ।

अब मिथ्यात्वादि दोषों को लाने वाला यह प्रघोष (a) पू. वाचकश्री जी का नहीं होगा, ऐसा मानकर इसे छोड़ना पड़े, या फिर (b) पू. वाचकश्री जी का है, ऐसा ही मानना हो तो इसका अर्थघटन नीचे लिखे अनुसार करें, तो मिथ्यात्वादि के दोषों का पोषक नहीं बनेगा :

(a) प्रघोष पू. वाचक उमास्वाति जी का है और शास्त्रीय है, ऐसा मानकर विचार करें **तो भी** उमास्वाति जी के समय में लौकिक पंचांग के साथ सम्बन्ध ही नहीं था, इसलिए...

प्रघोष **लौकिक पंचांग में बदलाव के लिए नहीं किया गया, बल्कि जैन टिप्पण के अनुसार ही उस-उस तिथि-पर्व को कब मानना और उसकी आराधना कब करनी ?** इसके निर्णय हेतु किया गया, ऐसा मानना उचित लगता है ।

(b) लोक व्यवहार में कर्म मास (ऋतु मास या सावन मास) महत्त्वपूर्ण होता है, इसलिए लोक व्यवहार में उसी का सविशेष उपयोग होता है ।

आराधना की तिथि भले ही चन्द्र मास से बनती हो, ऋतु का निर्णय भले ही सूर्य मास से होता हो, किन्तु प्ररूपणा या भाषा में या लोक व्यवहार में विनियोग तो कर्म मास से ही होता है ।

(c) अब कर्म मास की प्ररूपणा करनी हो तो चन्द्र मास–सूर्य मास का समावेश कैसे किया जाए ?

जैसे, राजस्थानी महीने (शास्त्रानुसारी) की चन्द्र तिथि के अनुसार आज चै.सु.१३-१४ है, अर्थात् चै.सु.१३ सुबह के ११:४७ तक है, उसके बाद चै.सु. १४ है। इसी समय कर्म (सावन) तिथि के अनुसार चै.सु.१३ है, अर्थात् चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष का तेरहवां दिन है।

अर्थात् निश्चय से आकाश में ११:४७ तक चन्द्र मास की चै.सु. १३ है, और बाद के समय से चै.सु.१४ है, किन्तु लोक व्यवहार में ऐसा ही कहा जाएगा कि आज चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष का तेरहवां दिन या कर्म तिथि है। **याद रहे कि कर्म मास की तिथि भी शास्त्रीय सत्य ही है।** शास्त्रों में अनेक स्थानों पर इसका व्यवहार है ही, जैसे, ``३६० राइंदिआणं'' आदि। अब यदि चन्द्र तिथि के अनुसार चै.सु. १४ को, अर्थात् मध्य रात्रि को परमात्मा महावीर देव का उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में जन्म कल्याणक है, तो भी लोक व्यवहार में ऐसा ही बोला जाएगा, कि चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष के तेहरवें दिन (तिथि) को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में जब चन्द्र का योग हुआ, उस समय प्रभु वीर का जन्म हुआ। इस प्रकार कल्याणक का वर्णन चन्द्र तिथि न मानते हुए कर्म तिथि मानना अधिक तर्कसंगत लगता है। कई बार ऐसा भी होता है कि चन्द्र तिथि और कर्म तिथि एक ही हो। (यह दृष्टान्त मात्र समझने के लिए दिया है, प्रस्तुत कल्याणक में ऐसा बना है, यह निश्चय नहीं है।)

१४ पूर्वधर पू. भद्राबाहुस्वामी जी भी कल्पसूत्र के मूल सूत्रों में इसी पद्धति से कल्याणकों की प्ररूपणा करते हैं, इसीलिए यह पद्धत्ति शास्त्रीय है, और उस काल के लोक व्यवहार की पद्धत्ति रही होगी, ऐसा प्रमाणित हो सकता है।

वस्तुतः लोक में और जैनों में प्ररूपणा की भाषा कर्म मास से जुड़ी हुई थी ऐसा लगता है। ऐसा भी लगता है कि चन्द्र तिथि की प्ररूपणा व्यवहार तिथि से होती है तथा नक्षत्र की प्ररूपणा निश्चय तिथि से होती है, क्योंकि आज भी जन्म-मरण तिथि व्यवहार (उदित) तिथि से और नक्षत्र निश्चय से ही दिखाई दिए जाते हैं।

फिर भी इस मामले में गहराई और तटस्थता से संशोधन होना चाहिए, कि कल्याणकों का वर्णन **(a) चन्द्र तिथि से या कर्म तिथि से करें? (b) व्यवहार से या निश्चय से करें? (c) 'उदयंमि जा सा' नियम की तिथि से है या कल्याणक के वास्तविक समय की तिथि से?**

उपरान्त १) प्ररूपणा कर्म तिथि से–आराधना चन्द्र तिथि से

२) प्ररूपणा कर्म तिथि से–आराधना कर्म तिथि से

३) प्ररूपणा चन्द्र तिथि से–आराधना कर्म तिथि से

४) प्ररूपणा चन्द्र तिथि से–आराधना चन्द्र तिथि से

उपरोक्त चतुर्भंगी में से कौनसा भंगा शास्त्रीय है, क्या इस मामले में संशोधन नहीं किया जाना चाहिए ?

नोट : कर्म तिथि = व्यवहार तिथि = उदयंमि जा सा नियमयुक्त तिथि है । चन्द्र तिथि = निश्चय तिथि = वास्तविक समययुक्त तिथि है ।

(d) अब क्षये पूर्वा का अर्थ :–

हमें यह पता ही है, कि मुख्य रूप से कर्म मास की अपेक्षा चन्द्र मास की तिथि का ही क्षय होता है । या चन्द्र तिथि का कर्म मास में क्षय (अवम रात्रि) होता है । उपरान्त सूर्य मास ($३०\frac{१}{२}$ दिन का होने के कारण २ सूर्य मास ६१ दिन) की अपेक्षा से कर्म मास (३० दिन का होने के कारण २ कर्म मास = ६० दिन, यानि दो सूर्य मास से १ दिन कम) और चन्द्र मास ($२९\frac{३२}{६२}$ दिन का होने से दो चन्द्र मास $५९\frac{२}{६२}$ दिन होते हैं, अतः सूर्य मास से $१\frac{६०}{६२}$ दिन कम) की तिथि का क्षय होगा, तथा कर्म मास की अपेक्षा से चन्द्र मास (२ कर्म मास की अपेक्षा से ६० – $५९\frac{२}{६२}$ दिन = $\frac{६०}{६२}$ दिन, लगभग १ दिन) की तिथि का क्षय आएगा । **प्रस्तुत में कर्म मास और चन्द्र मास की तुलना में क्षय होने वाली क्षय तिथि की बात है ।**

क्योंकि एक कर्म वर्ष में ३६० तिथि या ३६० दिन होते हैं ।

१ चन्द्र वर्ष = ३६० चन्द्र तिथि, और **१ कर्म वर्ष = ३६० कर्म तिथि (दिन)** होते हैं । अब ३६० चन्द्र तिथि बीतने में कर्म दिन के माप से **३५४ दिन ४ घ. ३८. मि. ४३ से.** का समय लगता है ।

१ ली चन्द्र तिथि की गणना – १ले कर्म दिवस को होती है,

२ री चन्द्र तिथि की गणना – २रे कर्म दिवस को होती है,

६१वें चन्द्र तिथि की गणना – ६१वें कर्म दिवस को होती है,

६२वीं चन्द्र तिथि की गणना भी ६१वें कर्म दिवस को होती है,

६३वें चन्द्र तिथि की गणना – ६२वें कर्म दिवस को होती है,

३६०वे चन्द्र तिथि की गणना – ३५४वें कर्म दिवस को होती है,

अब ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि जब ६२वीं चन्द्र तिथि का क्षय आएगा तब यदि वह बारह में से कोई एक पर्व तिथि हो तो ६१वीं तिथि का क्षय गिनना चाहिए, ६२वीं चन्द्र तिथि को ६१ वें कर्म दिन में मानना चाहिए और उस दिन आराधना करनी चाहिए ।

अर्थात् ६२वीं चन्द्र तिथि का क्षय होने से यदि वह पर्व तिथि हो, तो पिछली ६१वीं तिथि का क्षय मानकर उस दिन, यानि ६१वें दिन ६२वीं तिथि माननी चाहिए तथा ६२वीं तिथि की ही आराधना करनी चाहिए, यह क्षये पूर्वा हुआ । इस प्रकार ६२वीं चन्द्र तिथि का क्षय होने के कारण यदि वह पर्व तिथि हो तो ६१वीं चन्द्र तिथि का क्षय करके ६१वें कर्म दिन को ही ६२वीं चन्द्र तिथि का स्वीकार करना और उसकी आराधना भी ६२वें कर्म दिन को न करके पिछले ६१वें कर्म दिन को ही करना है ।

(e) वृद्धौ तथा उत्तरा : जैन शास्त्रानुसार वृद्धि तिथि आती ही नहीं, फिर भी स्याद्वाद शैली से किसी अपेक्षा से माननी हो तो यह कर्म मास की अपेक्षा से सूर्य मास में (अलबत व्यवहार में अभी ऐसा कहीं नहीं होता) आएगी ।

हमें पता है कि आधुनिक यूरोपीय गणित के अनुसार आने वाली वृद्धि तिथि वास्तव में तो जैन शास्त्रों के अनुसार **कर्म मास की अपेक्षा सूर्य मास में** आती है, चन्द्र मास की तिथि में बिलकुल नहीं । क्योंकि ३६० सूर्य तिथि (दिन) बीतने में कर्म दिवस की अपेक्षा से ३६६ कर्म दिन होते हैं ।

१ली सूर्य तिथि की गणना–१ले कर्म दिवस को होती है,

२री सूर्य तिथि की गणना–२रे कर्म दिवस को होती है,

६०वीं सूर्य तिथि की गणना–६१वें कर्म दिवस को होती है,

३६०वीं सूर्य तिथि की गणना–३६६वें कर्म दिवस को होती है,

कर्म मास ३० दिन का है, जबकि सूर्य मास **३०$\frac{१}{२}$** दिन का है ।

दो कर्म मास ६० के होते हैं और दो सूर्य मास ६१ दिन के होते हैं ।

इसलिए कर्म मास और सूर्य मास को एक करने के लिए दो सूर्य मास (६१ दिन) के साथ दो कर्म मास मिलाने के बाद एक दिन बढ़ाना पड़ेगा।

अर्थात् ६०वीं सूर्य तिथि की गणना ६१वें कर्म दिन करनी है। यानि ६०वीं सूर्य तिथि की वृद्धि होने के कारण उस तिथि की गणना ६० या ६१ में से कौनसे **कर्म दिवस** में करनी ? (क्योंकि दोनों कर्म दिवस को स्पर्श करती है) **तो उत्तर है, ``वृद्धौ तथा उत्तरा''** अर्थात् ६०-६१ दोनों दिन ६०वीं सूर्य तिथि उपस्थित हो तो दोनों में से जो बाद का (उत्तर) दिन है, उस दिन **६०वीं सूर्य तिथि का व्यवहार करना है।**

सूर्य दिवस (तिथि) का महत्त्व ऋतु की गणना तथा सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन की गणना करने में होता है।

उपरोक्त तरीकों से **`क्षये पूर्वा–वृद्धौ तथा उत्तरा'** का अर्थ क्यों नहीं ले सकते ? इस प्रकार निष्पक्ष शुद्ध विचारणा न की गई तो `वृद्धौ तथा उत्तरा' का सही अर्थघटन किस प्रकार होगा ? क्योंकि जैन शासन में वृद्धि तिथि आती ही नहीं। गीतार्थों से इस सन्दर्भ में निष्पक्ष विचार करके मार्गदर्शन देने की मेरी विनती है।

समाधान-३

सूर्यप्रज्ञप्ति और ठाणांग सूत्र की अन्य एक तिथि गणना पद्धति और वैदिक काल के साथ इसका समन्वय

यह चर्चा करनेसे पहले मेरा एक विचार प्रेरक मत बताना चाहूँगा:

``कम्मो निरंसयाए मासो ववहार कारणो लोए ।

सेसाओ संसयाए ववहारो दुक्करो घित्तुं ।''

(ज्योतिष करण्डक चौथा प्राभृत गाथा १४/१५ और सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ५७ की टीका में उद्धरण)

– इधर काल लोकप्रकाश के सर्ग २८, श्लोक नं. २८७-२८८ में `सर्वकाल विशेषा...धीधनैः ॥' द्वारा काल की गणना, आयुष्य की गणना, कर्मबंध की गणना आदि में सूर्य मास की प्रधानता और प्रयोजन दिखाया गया है ।

– तो मुहूर्तशुद्धि, आराधना आदि में हमें परम्परा में चन्द्र मास का प्रयोजन मिला हुआ ही है । अतः **सूर्य, चन्द्र और कर्म – इन तीनों मास का प्रयोजन भिन्न होने के बावजूद ये परस्पर जुड़े हुए हैं ।**

इसलिए १) चन्द्र मास – कर्म मास, २) सूर्य मास – कर्म मास, ३) सूर्य मास – चन्द्र मास का परस्पर संयोग होता है, इस हेतु शास्त्रों में अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था दिखाई गई है, जो इस प्रकार है:

१) चन्द्र मास – कर्म मास : इस दोनों महीनों का मेल करने हेतु ``अवमरात्रि'' का शास्त्रपाठ सूर्यप्रज्ञप्ति के सू.७५ और चन्द्रप्रज्ञप्ति के सूत्र (१२वां प्राभृत) में दिखाया गया है ।

२) सूर्य मास – कर्म मास : इन दोनों महीनों का मेल करने हेतु ``अतिरात्रि'' का शास्त्रपाठ सूर्यप्रज्ञप्ति के सू.७५, और चन्द्रप्रज्ञप्ति के सूत्र (१२ वां प्राभृत) में दिखाया गया है ।

३) सूर्य मास – चन्द्र मास : इन दोनों महीनों का मेल करने हेतु सूर्यप्रज्ञप्ति के सू. ५६, और ज्योतिष करण्डक प्राभृत–३ में ``अधिक मास'' के आयोजन की व्यवस्था की गई है ।

१) कर्म मास में अवमरात्रि और अतिरात्रि की विचारणा क्रमशः चन्द्र मास तथा सूर्य मास की अपेक्षा से करनी है, और वह अवमरात्रि क्षय तिथि से है, और अतिरात्रि वृद्धि तिथि से पहचानी जाती है । उपरान्त, निशीथचूर्णि के २०वें उद्देश में (पृ.२२७ पर) दिखाया है, कि तत्रादित्यसंवत्सरे षड्दिनानि ऋतुसंवत्सरापेक्षयाऽधिकानि चंद्रसंवत्सरे ऋतुवर्षापेक्षयैव न्यूनानि ।

एक ओर सूर्यप्रज्ञप्ति का सू.७५ और इसकी टीका यह दर्शाती है, कि **कर्म मास में** अवम रात्रि और अतिरात्रि **चन्द्र मास और सूर्य मास की अपेक्षा से** आती है, जबकि निशीथचूर्णि **कर्म मास की अपेक्षा से चन्द्र मास और सूर्य मास में** अवमरात्रि और अतिरात्रि दर्शाता है । क्या इन दोनों जिनागमों का अर्थ परस्पर विरोधी नहीं लगता ? तो इसका उत्तर है–नहीं । मुख्य रूप से सूर्यप्रज्ञप्ति के सू. ७५ का अर्थ अधिक तर्कसंगत लगता है और निशीथचूर्णि इसी अर्थ को अलग नय से बताता है, जो इस प्रकार है :

कर्म मास की तुलना में चन्द्र मास छोटा होने के कारण दोनों का मेल करने के लिए **कर्म मास में ६ अवमरात्रि आती है** इसलिए साधिक ५९ और इससे आगे साधिक ३५४ कर्म दिवस में क्रमशः ६० और ३६० चन्द्र तिथि पूर्ण होती है, इसलिए १ कर्म दिवस में २ चन्द्र तिथि रहेगी । अब **इन दो चन्द्र तिथियों में से एक को निश्चित कर्म दिवस वाले दिन पर मानना है और दूसरी को गौण करना है ।** इस प्रकार कर्म मास की अपेक्षा से चन्द्र मास में १ तिथि मुख्य और १ तिथि गौण करनी है – यह निशीथचूर्णि का अभिप्राय हुआ । इसी प्रकार सूर्य मास और कर्म मास की तुलना भी समझ लें ।

२) $\frac{६१}{६२}$ का गणित सूर्य वर्ष और चन्द्र वर्ष की तुलना करके अधिक मास के आयोजन हेतु है, जिसकी विशेष जानकारी पहले दी गई है । किन्तु हमने $\frac{६१}{६२}$ का **गणित क्षय तिथि के लिए लिया था, इसलिए प्रश्न उद्भव होता है ।** अब मूल बात पर लौटने से पले फिर से स्पष्टता कर लें, कि :–

• सूर्य मास और सूर्य वर्ष का प्रमाण क्रमशः ३० सूर्य दिवस (तिथि) और ३६० सूर्य दिवस (तिथि) होता है,

• चन्द्र मास और चन्द्र वर्ष का प्रमाण क्रमशः ३० चन्द्र दिवस (तिथि) और ३६० चन्द्र दिवस (तिथि) होता है,

• कर्म मास और कर्म वर्ष का प्रमाण क्रमशः ३० कर्म दिवस (तिथि) और ३६० कर्म दिवस (तिथि) होता है,

किन्तु चन्द्र मास या चन्द्र वर्ष की ३० और ३६० तिथियाँ पूर्ण होने में क्रमशः २९.५१६१ कर्म दिन और ३५४.१९३ कर्म दिन लगते हैं, और सूर्य मास और सूर्य वर्ष की ३० और ३६० तिथियाँ पूर्ण होने में क्रमशः ३०.५ कर्म दिन और ३६६ कर्म दिन लगते हैं। इसलिए (a) मुहूर्तशुद्धि और आराधना हेतु चन्द्र तिथि का उपयोग होने पर भी व्यवहार में तो कर्म तिथि ही चलती है, इसलिए साधिक ३५४ कर्म दिवस में ही ३६० चन्द्र तिथि समाप्त हो जाती है, अतः कर्म वर्ष में से लगभग ६ दिन न्यून करें, या फिर ३६० चन्द्र तिथि का साधिक ३५४ कर्म दिवस में समावेश करें तो ही चन्द्र मास और कर्म मास का मेल होगा। इन **६ दिनों को कर्म मास से न्यून (अवम) करना अवमरात्रि है। इस प्रकार ५९, ११८, १७७ २३६, २९५ और ३५४वें कर्म दिवस में क्रमशः ५९-६०वीं चन्द्र तिथि, ११९-१२०वीं चन्द्र तिथि, १७९-१८०वीं चन्द्र तिथि, २३९-२४०वीं चन्द्र तिथि, २९९-३००वीं चन्द्र तिथि और ३५९-३६०वीं चन्द्र तिथि समा जाती है।** इस प्रकार वास्तविक तिथि (चन्द्र तिथि) को व्यवहार में किस प्रकार प्रस्तुत करना, पहचानना और व्यावहारिक तिथि को (कर्म तिथि) वास्तविक तिथि के रूप में किस प्रकार करना, मानना और आराधना करना आदि का स्पष्ट मार्गदर्शन, यही `अवमरात्रि' और `क्षये पूर्वा' की विचारणा है।

सर्वप्रथम जिनागमों ने कर्म मास में चन्द्र मास की अपेक्षा से ६ अवमरात्रि और कर्म मास में सूर्य मास की अपेक्षा से ६ अतिरात्रि मानी है। अर्थात् ३५४ कर्म दिवस में ३६० चन्द्र दिवस (तिथि) पूर्ण होती है, इसलिए ६ (कर्म तिथियाँ) अवमरात्रि के रूप में मानी जाती है। क्योंकि ६ कर्म दिवस चन्द्र तिथि से रहित रह जाते हैं, और ३६० सूर्य दिवस पूर्ण करने में ३६६ कर्म दिवस पूर्ण होते हैं, यानि ६ (कर्म दिवस में) अतिरात्रि आती है। संक्षेप में कहें तो नए ६ कर्म दिवस बढ़ाने पड़ेंगे, क्योंकि प्रत्येक सूर्य ऋतु के अन्त में एक–एक करके कुल ६ सूर्य तिथियाँ कर्म दिवस से रहित न रहे, इस हेतु प्रत्येक ऋतु के अन्त की एक–एक करके कुल ६ सूर्य तिथियों को २–२ कर्म दिवस के साथ जोड़ने के लिए ६ कर्म दिवस बढ़ाने पड़ेंगे।

यह अवमरात्रि और अतिरात्रि (कर्म वर्ष) ऋतु वर्ष के कौनसे पर्व में आती है, इसकी बात सूर्यप्रज्ञप्ति के सूत्र ७५, चन्द्रप्रज्ञप्ति के सूत्र (१२ वां प्राभृत) में बताई है, जो इस प्रकार है :–

``तत्थ खलु इमे छ ओमरता पण्णत्ता । तं-ततिए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पन्नरसमे पव्वे, एगूणवीसतमे पव्वे, तेवीसतिमे पव्वे, तत्थ खलु इमे छ अतिरत्ता पण्णत्ता-तं-चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, बारसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसतिमे पव्वे, चउवीसतिमे पव्वे । छच्चेवय अइरत्ता आइच्चाओ हवंति माणाहि छच्चेव ओमरत्ता चंदाहि हवंति माणाहिं ।। सु.७५।।''

सूर्यप्रज्ञप्ति सू. ७५में बताता है कि–सकले तु कर्म्मसंवत्सरे षट् अवमरत्ताः, कर्मसंवत्सरे चंद्रसंवत्सरमधिकृत्य व्यवहारतः खल्विमे वक्ष्य-माणक्रमाः षट् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः

उपरान्त वहीं टीका में लिखा है कि–आदित्यमपेक्ष्य कर्म्मासचिंतायां प्रतिवर्ष षट् अतिरात्रा भवंति इति माणाहिं–जानीहि ।

अर्थात् a) कर्ममास के ३, ७, ११, १५, १९, २३ वें पर्व में अवमरात्रि आती है, और कर्ममास के ४, ८, १२, १६, २०, २४ वें पर्व में अतिरात्रि आती है । या

कर्ममास का ३रा, ७वां, ११वां, १५वां, १९वां, २३वां पर्व अवमरात्रि बनता है, और कर्ममास का ४था, ८वां, १२वां, १६वां, २०वां, २४वां पर्व अतिरात्रि बनता है ।

क्योंकि तृतीये, सप्तमे आदि शब्दों का अर्थ प्रथम या सप्तमी विभक्ति से हो सकता है ।

कर्ममास की तुलना में सूर्यमास का प्रमाण अधिक है । वास्तव में ऋतु की गणना सूर्यमास से (६१ दिन से) होती है, किन्तु लोकव्यवहार में ऋतु ६० दिन से गिनी जाती है, इसलिए ऋतुवर्ष पहले समाप्त होता है, नया शुरू भी पहले होता है । जबकि सूर्य वर्ष बाद में समाप्त होता है और शुरू भी बाद में होता है । इसलिए

a) चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **३रे पर्व में १ली अवमरात्रि,**
   सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **४थे पर्व में १ली अतिरात्रि,**

चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **७वें पर्व में २री अवमरात्रि,**
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **८वें पर्व में २री अतिरात्रि,**
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **११वें पर्व में ३री अवमरात्रि,**
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **१२वें पर्व में ३री अतिरात्रि,**
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **१५वें पर्व में ४थी अवमरात्रि,**
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **१६वें पर्व में ४थी अतिरात्रि,**
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **१९वें पर्व में ५वीं अवमरात्रि,**
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **२०वें पर्व में ५वीं अतिरात्रि,**
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास में **२३वें पर्व में ६ठी अवमरात्रि,**
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास में **२४वें पर्व में ६ठी अतिरात्रि, आएगी।**

b) चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का ३रा पर्व = १ली अवमरात्रि,
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का ७वां पर्व = २री अवमरात्रि,
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का ११वां पर्व = ३री अवमरात्रि,
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का १५वां पर्व = ४थी अवमरात्रि,
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का १९वां पर्व = ५वीं अवमरात्रि,
चन्द्र मास की अपेक्षा से कर्म मास का २३वां पर्व=६ठी अवमरात्रि बनेगी, तथा
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का ४था पर्व = १ली अतिरात्रि,
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का ८वां पर्व = २री अतिरात्रि,
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का १२वां पर्व = ३री अतिरात्रि,
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का १६वां पर्व = ४थी अतिरात्रि,
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का २०वां पर्व = ५वीं अतिरात्रि,
सूर्य मास की अपेक्षा से कर्म मास का २४वां पर्व = ६ठी अतिरात्रि बनेगी,

अब ध्यान से अवमरात्रि के बारे में विचार करने से पता चलेगा कि :–

a) के अनुसार ३रे, ७वें, ११वें, १५वें, १९वें और २३वें पर्व में, और

b) के अनुसार ३रा, ७वां, ११वां, १५वां, १९वां और २३वां पर्व अवमरात्रि बनता है ।

अर्थात् दो अवमरात्रि के बीच ३ पर्व = प्राय: दो माह बीत जाते हैं । इसलिए

a) के अनुसार १ अवमरात्रि आने के बाद ३ पर्व निकलते हैं, और ४थे पर्व में दूसरी अवमरात्रि आती है, या फिर

b) के अनुसार १ अवमरात्रि आने के बाद ३ पर्व बीतते हैं, फिर उसकेबाद का ४ था पर्व ही २री अवमरात्रि बनता है ।

इस प्रकार एकान्तर महीने में = ३ पर्व छोड़कर ४थे पर्व में अवमरात्रि आती है ।

अत: एक कर्म मास ३० दिन का और दूसरा कर्म मास २९ दिन का होगा । या १५ दिन के तीन पक्षों (पर्वों) के बाद वाला ४ था पक्ष (पर्व) १४ दिन का होगा । क्योंकि ४ थे पर्व में अवमरात्रि आती है । ठाणांग सूत्र भी (वदान्त पक्ष की लौकिक मान्यतानुसार) यही कहता है:–

आसाढे णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।
भद्दवते णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।
कत्तिए णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।
पोसे णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।
फग्गुणे णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।
वइसाहे णं मासे एगूणतीसं रातिंदियाइं रातिंदियग्गेणं पण्णत्ते ।

सूत्र २९ ठाणांग

अत: १ तिथि अवम होने से, और वह भी पर्व तिथि होने से उसके पूर्व की तिथि का क्षय (अवम) करके उस पर्व तिथि को पिछली अपर्व तिथि के स्थान पर मानते हुए वहीं आराधना करनी चाहिए । इस प्रकार दोनों तिथियाँ एक ही दिन में समा जाने के कारण एक माह ३० दिन का और उसके बाद का माह २९ दिन का दिखाया गया है ।

इसका सीधा अर्थ यह है, कि इस पद्धत्ति के अनुसार २ अवमरात्रि के बीच ६० दिन से अधिक अन्तर बिल्कुल नहीं होता, इसलिए :–

१) $\frac{६१}{६२}$ =६१वें दिन ६२ वीं तिथि के क्षय वाला गणित क्षय तिथि के लिए न लेकर चन्द्रमास और सूर्यमास की समानता के लिए लेना चाहिए । क्योंकि ६१वां दिन = सूर्यऋतु की समाप्ति है और इसमें ६२वीं तिथि सम्पूर्ण समा चुकी है । इसलिए १ सूर्यऋतु पर साधिक पौने दो तिथि युक्त चन्द्र की १ चन्द्रऋतु बीतती है, और कर्ममास का १ दिन बढ़ा । इस प्रकार ५ वर्ष

में कर्ममास के ३० दिन बढ़ेंगे, इसे जोड़ने से कर्ममास और सूर्यमास का भेद दूर होगा ।

और इस तरह साधिक पौने दो तिथि x १५ ऋतु (२$\frac{१}{२}$ वर्ष में) = चन्द्र की ३० तिथियाँ = **२९$\frac{३२}{६२}$** दिन बढ़ेंगे, जो अधिक मास बनेगा ।

२) अधिक मास के लिए चन्द्रमास और सूर्यमास का फर्क (प्रत्येक ऋतु में लगभग पौने दो दिन) लें, ताकि २$\frac{१}{२}$ वर्ष में **२९$\frac{३२}{६२}$** दिन बढ़े । फिर २$\frac{१}{२}$ वर्ष में **२९$\frac{३२}{६२}$** दिन बढे, इस प्रकार पांच वर्ष में चन्द्र के मास में २ अधिक मास आएँगे, जिसकी विशेष चर्चा आगे आएगी । इस प्रकार **$\frac{६१}{६२}$** की विचारणा अधिक मास हेतु है, यह तर्कसंगत लगता है ।

३) क्षय तिथि हेतु कर्म मास और चन्द्र मास के भेद को बताने वाले गणित को ही लेना चाहिए, ताकि साधिक ५९ कर्म दिवस में = ५९.०३२२५८३३३ = ५९ दिन ४६ मि. २७ से. कर्मदिवस में चन्द्र की ६० तिथि समाप्त हो जाए ।

अर्थात् a) के अुसार ५९वें कर्मदिवस को **५९ और ६०वीं** चन्द्र तिथि दोनों संयुक्त रूप से होगी । सदैव ६०वीं तिथि पूर्णिमा या अमावस्या = पर्व तिथि ही होगी याद रहे प्राचीनकालमें वैदिकधर्म की परंपरा में पूनम–अमावस को ही पर्व मानते थे । **इसलिए ५९वें दि ५९वीं तिथि न मानते हुए ६०वीं तिथि माननी और आराधना करती है । ३५४वें दिन ३५९वीं तिथि न मानते हुए ३६०वीं तिथि माननी और आराधना करनी है । यह मान्यता प्राचीन काल में और अन्य परम्परा में भी थी । और यह मानें तो ही कर्म मास–चन्द्र मास का फर्क बैठेगा । अतः ६०वीं तिथि का पर्व ५९वें दिन मानकर आराधना करनी चाहिए ।** जो युगारम्भ के ३रे, ७वें, ११वें, १५वें, १९वें और २३वें पर्व में आएगा, इस प्रकार ६ अवमरात्रि बनती है ।

कर्मऋतु से चन्द्रऋतु जल्दी समाप्त होने के कारण ६०वें कर्म दिवस को चन्द्र की ६०वीं तिथि का मात्र २/६२ भाग ही मिलता है, अतः ६०वां कर्म दिवस – ६०वीं चन्द्र तिथि से बहुधा खाली रहता है, इसलिए ६०वें कर्म दिवस का (कर्मऋतु का अन्तिम दिवस) अवम बनता है, और ५९वें कर्म दिवस में ५९/६० उभय चन्द्र तिथि का भाग आता है । अब ६०वीं चन्द्र

तिथि पर्वात्मक (पर्व तिथि) होने के कारण इसका अस्तित्व और आराधना अखण्ड होनी चाहिए, इसलिए ५९वीं चन्द्र तिथि को गौण करना है, उसका क्षय करना है और ५९वें कर्म दिवस को ६०वीं चन्द्र तिथि मानकर आराधना करनी है । अतः

- **६०वां कर्म दिवस अवमरात्रि बनता है,**
- **५९वीं चन्द्र तिथि क्षय तिथि बनती है,**
- **६१वां कर्म दिवस अतिरात्रि बनता है, और**
- **६०वीं सूर्य तिथि वृद्धि तिथि बनती है ।** ऐसा ही आगे की तिथियों में भी समझें ।

b) के अनुसार ३,७,११,१५,११ और २३वां पर्व, यानि ३ पर्व छोड़कर ४था पर्व अवम बनता है । तात्पर्य यह, कि ३रे (वैसे ४थे) पर्व में (पक्ष में) आने वाली पर्व तिथि उस दिवस का पूर्वार्ध भी नहीं भुगतती, अतः इसके पूर्व की अपर्व तिथि का क्षय करके उस पूर्व के दिवस को ही वह पर्व तिथि मानकर आराधना करनी चाहिए ।

अर्थात् ३ पर्व के बाद वाले ४थे पर्व (पक्ष) की द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा या अमावस्या की पर्व तिथि क्रमशः पिछली (पूर्व में) माननी और आराधना करनी चाहिए ।

उदाहरण

४७वें कर्म दिवस की जगह ४६वें दिन द्वितीया मानें और आराधना करें,

५०वें कर्म दिवस की जगह ४९वें दिन पंचमी मानें और आराधना करें,

५३वें कर्म दिवस की जगह ५२वें दिन अष्टमी मानें और आराधना करें,

५६वें कर्म दिवस की जगह ५५वें दिन एकादशी मानें और आराधना करें,

५९वें कर्म दिवस की जगह ५८वें दिन चतुर्दशी मानें और आराधना करें,

६०वें कर्म दिवस की जगह ५९वें दिन पूनम/अमावस मानें और आराधना करें,

इस प्रकार इस पर्व में (पक्ष में) व्यवस्था बदलती रहती है, इसलिए इसे अवम पर्व माना गया, ऐसा अर्थ लगा सकते हैं ।

लगभग हमारी ये सभी परम्पराएँ छूट ही गई हैं ।

यदि क्षय तिथि इस प्रकार ली जाए तो ही ठाणांग सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्तिआदि के पाठ व्यवस्थित बैठ सकते हैं ।

यहाँ यह बताना आवश्यक है, कि **क्षये पूर्वा** = कर्म दिवस की अपेक्षा से अवम / क्षय आता हो तब उस कर्म दिवस में मनाई जाने वाली (आने वाली) चन्द्र तिथि पहले माननी और आराधना करनी, और वृद्धौ उत्तरा = जिस कर्म दिवस की (अपेक्षा से) वृद्धि तिथि (अतिरात्रि) आए, तब उस कर्म दिवस में मनाई जाने वाली (आने वाली) सूर्य तिथि उत्तर के कर्म दिवस में माननी और आराधना करनी चाहिए ।

उदाहरण : ६०वें कर्म दिवस का अवम हो, तब ६०वीं चन्द्र तिथि (पिछले) अर्थात् ५९वें कर्म दिवस को माननी और आराधना करनी चाहिए ।

६०वें कर्म दिवस की वृद्धि (अतिरात्रि) हो तब ६०वीं सूर्य तिथि (बाद वाली) अर्थात् ६१वें कर्म दिवस को माननी और आराधना करनी चाहिए ।

अतः, क्या मानना और कब आराधना करनी ? इसका उत्तर है–**चन्द्र तिथि (सूर्य तिथि)**

किसमें मानना और कब आराधना करना ? इसका उत्तर है–**कर्म तिथि में ।**

इस गणित की स्पष्टता अन्य पद्धति से वेदांग ज्योतिष में भी मिलती है, इसके अनुसार क्षय तिथि लेने से सब कुछ व्यवस्थित हो जाता है ।

लगधमुनि प्रोक्त वेदांग ज्योतिष का श्लोक नं.१२ इस प्रकार हैः-

द्यु हेयं पर्व चेत् पादे, पादस् त्रिंशत् तु सैकिका ।
भागात्मनाऽपमृज्यांशान्, निर्दिशेदधिको यदि ॥१२॥

इसके अलावा शिवराज आचार्य कौंडिन्यायन द्वारा की गई व्याख्या युक्त वेदांग ज्योतिष की पुस्तिका में अन्य ग्रंथों के पाठ दिए गए हैं, जो अपने ठाणांग सूत्र के साथ पूर्ण रूप से मेल खाते हैं । यह इस प्रकार हैः

हेमन्तानामिति। यथा वर्षा इत्येकस्मिन्नप्यर्थे बहुवचनं प्रसिद्धम्, तथा हेमन्ता ग्रीष्मा इति द्रष्टव्यम्। प्रवचने त्रय एवर्तवः, न यथा लोके षडिति। शिशिरो हि शीतसामान्याद् धेमन्त इत्युक्तः, वसन्तोऽप्यूष्मसामान्याद् ग्रीष्म इत्युक्तः, शरदपि वृष्टिसामान्याद् वर्षा इत्युक्तेति।

[हेमन्तग्रीष्मवर्षाणामध्यर्धे मासि निर्गते।
शेषेऽर्धमासे विद्वद्भिरूनरात्रो निपात्यते॥]

हेमन्तग्रीष्मवर्षाणामिति। सर्वबौद्धानां हेमन्ताः प्रथम ऋतुः, ग्रीष्मा द्वितीयः, वर्षास् तृतीयः। अधिकमर्धमस्येत्यध्यर्धो मासः, तस्मिन्नध्यर्धे मासि निर्गते। मार्गशीर्षे सपौषार्धेऽधि(ति)क्रान्ते। शेषेऽर्धमासे पौषस्याऽर्धेऽवशिष्टे कृष्ण-चतुर्दश्याम् ऊनरात्रो निपात्यते त्यज्यत इत्यर्थः। चातुर्दशिकोऽत्र भिक्षुभिः पोषधः क्रियते। एवं माघे फाल्गुनावशिष्टे पुनरपर ऊनरात्रो निपात्यते। तथा ग्रीष्मेषु वैशाखकृष्णचतुर्दश्याम्, आषाढकृष्णचतुर्दश्यां चाऽपरावूनरात्रौ निपात्येते। वर्षास्वपि भाद्रपदकृष्णचतुर्दश्यां कार्त्तिककृष्णचतुर्दश्यां चापरा-वूनरात्रौ निपात्येते। इति

—स्फुटार्थव्याख्यायाम्, अभिधर्मकोशे वसुबन्धुविरचितस्वोपज्ञभाष्यसहिते,
यशोमित्रकृत-स्फुटार्थ-व्याख्योपेते, तृतीये कोशस्थाने
लोकधातु-निर्देशप्रकरणे (श्लो. ८८-८९)।

नोट :– हम सुदान्त मास की मान्यता वाले हैं, किन्तु उपरोक्त पाठ वदान्त मास की अपेक्षा से है, इसलिए इतना फर्क आएगा ।

अतः यदि जिनागमों और वेदांग ज्योतिष की अनेक मान्यताएँ समान नजर आती है, तो जिनागमों में प्राप्त अवमरात्रि और अतिरात्रि की व्याख्या का अर्थघटन करने के लिए वेदांग ज्योतिष की गाथा-१२ के अर्थ की सहायता लें, तो बहुत सारे संघर्ष टाले जा सकते हैं ।

[पक्षद्युहानव्यवस्था, पादपरिभाषादिकं च]

द्यु हेयं पर्व चेत् पादे पादस् त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनाऽपमृज्याऽंशान् निर्दिशेदधिको यदि॥१२॥

(सोमाकरभाष्यम्)

दुहेयं पर्व चेत् पाद इति। पर्वाऽर्धमासः। यथाह नैरुक्तः–"**अर्धमासः पर्व देवा अस्मिन् प्रीणन्तीति वचनात्**" (१।६।६)। तच् चेद् यदि दुहेयं गर्गोक्तलवादिकल्पनया-ऽधिकमासार्थं यच् छिष्यते तत् सङ्ख्यायैकं कल्पयेत्।

यथाह गर्गः–

ततः प्रक्षीयमाणस्य तिथिरित्येव सञ्ज्ञिता।
द्विलवोनमहोरात्रं सोमस्य गतिरुत्तमा॥ इति।

एतदूनं कियद् भवेदित्याह पाद इति। तदप्यप्रतीतमित्याह पादस् त्रिंशत् तु सैकिका नाडिकेति वाक्यशेषः। तत्राधिकमासनिष्पत्तिः।

यथाह गर्गः–

द्विलवक्षयसम्भूतो द्वाषष्टिर् भवते तिथिः।
ऋतोरन्तमनुप्राप्य हीनरात्रेति नामतः॥

<u>सभाष्ये सव्याख्याने च वेदाङ्गज्योतिषे</u>

यस्मात् तस्मादेतावन्मात्रमर्धमासस्याऽह्ना ह्रसते तस्य भागात्मनाऽपवृज्याऽंशान् नेर्दिशेत्। सङ्कलितं व्यवस्थाप्यैकत्र सङ्कलयेदंशं लवानां कुतस् तदधिकदिनानां लुप्त-चादिति वाक्यशेषः। एवं तूक्तभागानां विसूचितानामुत्तरत्र वक्ष्यमाणानामंशानाम्॥१२॥

(कौण्डिन्न्यायनव्याख्यानम्)

अथ इष्टिदिनविशेषनिरूपणं कुर्वन् शास्त्रकार आह– द्यु हेयं पर्व चेदित्यादि।

पूर्वयागदिवसात् पञ्चदशे दिवसे दिनस्य प्रथमे पादे <u>पञ्चदशी-प्रतिपदोः सन्धिर्</u> भवति चेत् एकं दिनं त्याज्यम्, <u>अर्थात् पूर्वां चतुर्दशीं त्यक्त्वा पूर्वदिनमेव पञ्चदशीरूपं स्वीकृत्य</u> <u>तत्रैवोपसथो</u> वा <u>तदपराह्णे पिण्डपितृयज्ञो वा कर्तव्यः</u>, पञ्चदशे दिने एव यागः कर्तव्य इति भावः। चतुर्विंशशतांशकस्य दिनस्य पादस् तु सैका त्रिंशत् (३१) अंशा ज्ञेयाः। यदि पर्वदिनांशराशिसङ्कलने समागतो दिना-ऽंशराशिर् दिनसम्पूर्णांशेभ्योऽधिको भवति तर्हि दिनसम्पूर्णांशभागरूपेण राशिना तं राशिमपमृष्टं कृत्वाऽवशिष्टानंशान् तत्पर्वदिनांशरूपेण निर्दिशेदित्यर्थः।

उदा.	कर्म मास का दिन	पूर्वा तिथि	उत्तरा तिथि	तिथि का संधिकाल
	५९	भा.सु.-१४	भा.सु.-१५	दिन के पूर्वार्ध की समाप्ति से पूर्व
	६०	भा.सु.-१५	भा.व.१	दिन के पूर्वार्ध की समाप्ति से पूर्व

जब ऐसा हो तब भा.सु. १५ को ६०वें कर्म दिवस को नहीं मानकर (५९वें कर्म दिवस की भा.सु. १४ को छोड़कर) ५९वें कर्म दिवस को माननी और आराधना करनी चाहिए ।

वेदांग ज्योतिष की गाथा १२ और उसकी टीका के अनुसार :

(a) तिथि का माप दिन $\frac{६१}{६२}$ दिन=२९$\frac{३२}{६२}$ मु.=२३ घ.३६ मि.४६ से लिया है,

(b) सभी तिथियों के माप उपरोक्त प्रमाण जितना ही है, अर्थात् समान है,

(c) इस गणित में कभी भी वृद्धि तिथि नहीं आती,

(d) कर्मवर्ष की तुलना में चन्द्रवर्ष में ६ तिथि ही अवम होती है । अर्थात् ३५४.१९३५५ कर्मदिवस में ३६० चन्द्रतिथि पूर्ण करनी होती है, और

(e) इस प्रकार प्रत्येक दिवस दो चन्द्र तिथियों का भाग आता है, प्रत्येक दिन में दो तिथियों का भाग व्याप्त होकर रहता है ।

अर्थात् **१ कर्म दिवस में भिन्न-भिन्न २ चन्द्र तिथियों का भाग आता है जिसे पूर्वा तिथि और उत्तरा तिथि के नाम से पहचाना जाता है ।**

उपरोक्त सभी बातों का जिनागमों के साथ समन्वय होता है, किन्तु अब नीचे बताई गई बातें हमारे लिए नई हैं ।। गीतार्थों को इस मामले में गम्भीर विचार करना चाहिए और श्रीसंघ को मार्गदर्शन देना चाहिए, कि क्या इन बातों से संघभेद और तिथिभेद के संघर्ष का निवारण हो सकता है ? क्या जैन टिप्पण पुनर्जीवित किया जा सकता है या नहीं ?

वेदांग मान्यता के अनुसार :–

(a) १ कर्म दिवस में व्याप्त तिथियों में से उपरोक्त पूर्वातिथि और उत्तरातिथि में से किस तिथि को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिए ? आराधना

हेतु दो चन्द्र तिथियों में से कौनसी चन्द्रतिथि को मान्यता देनी चाहिए ? इस मामले में वेदांग ज्योतिष बताता है कि, **``प्रागर्धे पर्व यदा, तदोत्तराऽतो-ऽन्यया तिथि पूर्वाः ।।''** अर्थात् यदि पर्वतिथि दिन के पूर्वार्ध में पूर्ण होती हो, तो उस दिन की उत्तरातिथि को सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक मानें और आराधना करें। किन्तु यदि पर्वतिथि पूर्वार्ध के बाद पूर्ण होती हो, तो उस दिन की पूर्वातिथि को सम्पूर्ण अहोरात्रि मानें और आराधना करें। उस दिन उस तिथि की **मात्र आराधना करने का ही नहीं, बल्कि मानने का नियम (P. ७७ ५२) दिए गए ``पूर्वां चतुर्दशीं त्यक्त्वा पूर्वदिनमेव पंचदशीरुपं स्वीकृत्य'' से बना है ।**

(b) प्राचीन काल में पर्व=पूर्णिमा, अमावस्या को भिक्षुक पौषध और यज्ञ–याग आदि धर्मक्रियाएँ करते थे। **उनके अनुसार पर्व तिथि पूनम और अमावस** ही थी, और कोई नहीं । **इसलिए उसकी आराधना अनिवार्य थी...।** अब जैसे १ दिवस में २ तिथियाँ होती हैं, वैसे अधिकांश रूप से सभी तिथियाँ (पहली और ६२वीं छोड़कर) **२ दिन** में व्याप्त होकर रहती है ।

(c) इसलिए १ले कर्मदिवस को उसमें व्याप्त १ली पूर्वा और २री उत्तरा चन्द्रतिथि में से कौनसी तिथि मानें ? इसका समाधान पाना आवश्यक है। तो इसका उत्तर है, कि १ले दिवस उसमें रही पूर्वा तिथि को मानें और आराधना करें ।

(d) तो दूसरा प्रश्न होता है, कि पहले कर्मदिवस की दूसरी चन्द्र तिथि उत्तरा की आराधना पहले कर्मदिवस करनी है या दूसरे कर्मदिवस को ? तो उत्तर है, दूसरे कर्मदिवस को करनी है। अर्थात् दूसरी तिथि, पहले दिवस को उत्तरातिथि है, और दूसरे दिन पूर्वातिथि है, इसलिए दूसरे दिन पूर्वातिथि के रूप में रहने वाली इस दूसरी तिथि को मानें और आराधना करें। इसी प्रकार पूनम और अमावस रूपी पर्व की मान्यता और आराधना कब करनी, इसका निर्णय लेना आवश्यक है, क्योंकि दोनों पर्व तिथि (पूनम और अमावस) अन्य तिथि की भांति दो दिन में व्याप्त (या उसी दिन के पूर्वा या उत्तरा तिथि के रूप में) होती है। इसलिए दोनों दिवस में से कौनसे दिन आराधना करनी चाहिए ?

(e) तो क्या ऐसा नियम है कि हमेशा कर्मदिवस में जो तिथि पूर्वा हो उसी की आराधना करनी चाहिए ? तो उत्तर है, नहीं । इसीलिए गाथा में दिखाया है कि :–

(f) यदि पर्व तिथि (पूर्णिमा और अमावस्या) जिस कर्म दिवस के पूर्वार्ध में पूर्ण हो जाए, तो उस कर्म दिवस को उत्तरा तिथि = वदी या सुदी १ की आराधना होती है और पर्व की गणना और आराधना पिछले कर्म दिवस को होती है । अर्थात् पिछले दिवस के उत्तरार्ध में रहे पर्व को मानते हुए आराधना करनी है । (प्रगार्धे पर्व यदा, तदोत्तरा...)

(g) किन्तु यदि पर्व तिथि उस दिवस के पूर्वार्ध के बाद पूर्ण हो, तो उसी कर्मदिवस को उस पूर्वा तिथि (चन्द्रतिथि) को प्रधानता देते हुए पर्वाराधना उसी दिन करनी चाहिए । (अतोऽन्यया तिथि पूर्वा:)

उदा.	पूर्वा तिथि	पूर्वा तिथि का समाप्ति समय घ. मि. से.	उत्तरा तिथि	उत्तरा तिथि को मिलने वाला दिन का बाकी का सूर्योदय तक का समय घ.मि.से.	मान्य एवं आराध्य तिथि
1a	श्रा.व.१४	२४:३४:४८	श्रा.व.०))	५:२५:१२	श्रा.व.१४ पूर्वा
b	श्रा.व.०))	२४:११:३४	श्रा.सु.१	५:४८:०८	श्रा.व.०)) पूर्वा
2a	भा.सु.१३	७:३२:५२	भा.सु.१४	२२:२७:०८	भा.सु.१४ उत्तरा
b	भा.सु.१४	७:०९:३८	भा.सु.१५	२२:५०:२२	भा.सु.१५ उत्तरा
c	भा.सु.१५	६:४६:२४	भा.व.१	२३:१३:३६	भा.व.१ उत्तरा
3a	दूसरे वर्ष की भा.सु.१४	११:४८:२२	भा.सु.१५	१८:११:३८	भा.सु.१५ उत्तरा
b	दूसरे वर्ष की भा.सु.१५	११:२५:०८	भा.व.१	१८:३४:५२	भा.व.१ उत्तरा

नोट : १) काल्पनिक रूप से सूर्योदय का समय लगभग ६ बजे का माना है ।
२) **2a से 3b तक :** पूर्वा तिथि पूर्वार्ध से पहले पूर्ण हो गई, इसलिए उत्तरा तिथि आराध्य है । उदाहरण 2 और 3, इन दोनों में पूर्वा तिथि पूर्वार्ध से पूर्व समाप्त हो रही है, इसलिए दोनों दिन उस दिन की उत्तरा तिथि की आराधना होनी चाहिए ।

क्या हम यह पद्धत्ति स्वीकार कर सकते हैं ? इस मामले में गीतार्थ अपना मार्गदर्शन दें, ऐसी मेरी विनती है ।

कदाचित् **मध्यरात्रि से** युगारम्भ तथा तिथि की शुरूआत मानें तो **पूर्वार्ध सूर्योदय** पर पूर्ण हो, तो **'उदयंमि जा'** श्लोक का भावार्थ भी बैठ जाए । किन्तु इस प्रकार **सूर्योदय से** युगारम्भ मानें तो प्रायः **पुरिमड्ढ** पच्चक्खाण तक पूर्वार्ध चलेगा ।

संक्षेप में कहें, तो वेदांग ज्योतिष की यह पद्धत्ति यह दर्शाती है, कि दिन के १२४ में से ३१ भाग, यानि **कम से कम पूर्वार्ध के ६.०० घण्टे का भाग तिथि हो, तो उसी दिन, अन्यथा पिछले (पहले के) दिन उस तिथि को मानकर आराधना करनी चाहिए ।**

अतः अन्य परम्परा मात्र दो ही पर्व मानती होने के कारण पूर्णिमा और अमावस्या के पर्व हेतु यह विधि बताई है । हम द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या, सबको पर्वतिथि मानते हैं, तो इन सभी तिथियों के लिए क्या इसी विधि से आचरण नहीं किया जा सकता ?

(याद रहे कि इस पद्धत्ति में क्षय तिथि कर्ममास–चन्द्रमास की अपेक्षा से ही ५९-६०वें दिन दिखाई है । फिर भी युग में सूर्यमास–कर्ममास, सूर्यमास–चन्द्रमास का मेल भी करना होता है इसलिए ५९-६० का गणित एक वर्ष के लिए ही जानें, तत्पश्चात् सामान्य बदलाव भी होंगे । या तो अधिकमास को (सूर्यमास–चंद्रमास का मेल) फल्गु समझ के आगे बढे तो (८९-९०) ५९-६० का गणित लंबे समय तक चलेगा वरना अधिकमास को adjust करके युग के अंतमें सभी (सूर्य–चंद्र–ऋतु) मास को एक करने हेतु कभी ५९-६० की जगह ७४-७५ का गणित क्षयतिथि के लिए आएगा ।)

जो **मध्यरात्रि से युगारम्भ** मानना हो तो $\frac{१}{४}$ भाग = लगभग ६ घण्टे होते हैं, अतः **सूर्योदय के समय जो तिथि** हो उसकी आराधना करने का नियम बनता है । और यदि **सूर्योदय से युगारम्भ** मानना हो तो $\frac{१}{४}$ भाग = लगभग ६ घण्टे हुए, तो **पुरिमड्ढ पच्चक्खाण** के समय जो तिथि हो उसकी आराधना पूरे दिन होनी चाहिए ।

छोटूभाई सुथार ``ब्रह्माण्ड दर्शन'' पुस्तक में लिखते है कि ``आर्यभट्ट'' ने ``आर्यभट्टीय'' ग्रन्थ की रचना की, जिसमें उस समय में **युगारम्भ अर्धरात्रि से और सूर्योदय से गिनने की पद्धत्तियों को क्रमशः अर्धरात्रिक गणना और औदयिक गणना प्रचलित होना बताया है । इस प्रकार :–**

१) ४२ सेकण्ड के संस्कारपूर्वक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला प्रत्यक्ष के साथ मेल करवाने वाला $\frac{६१}{६२}$ का (संस्कारयुक्त) गणित,

२) ``क्षये पूर्वा'' प्रघोष चन्द्रमास के कर्ममास हेतु, और ``वृद्धौ उत्तरा'' प्रघोष सूर्यमास से कर्ममास की विचारणा का गणित,

३) ३६० दिन में ६ तिथियों के क्षय का ठाणांग, सूर्यप्रज्ञप्ति और वेदांगज्योतिषानुसार प्राचीन गणित ।

वर्तमान का जन्मभूमि पंचांग या उपरोक्त तीनों विकल्पों में से जो पद्धत्ति स्वीकार हो, किन्तु आराधना का नियामक तो स्थूल गणित ही बनेगा, या सूक्ष्म गणित का स्थूल उपयोग बनेगा । जन्मभूमि के अनुसार मानने से वृद्धि तिथि और शास्त्राज्ञाभंग का दोष भी लगेगा, जो उपरोक्त तीन विकल्पों में नहीं लगता ।

गीतार्थों से भावपूर्वक विनती है कि इन भिन्न-भिन्न विकल्पों पर इस प्रकार विचार करें । ये तीन विकल्प कोई नया असमंजस उत्पन्न करने हेतु नहीं रखें, परंतु जब सत्यभाव तक पहुँचना हो तो विभिन्न विकल्पों के लाभालाभ की विचारणा करके अन्तिम निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं, इसलिए ये तीन विकल्प दिए गए हैं ।

अधिक मास की निष्पत्ति

सूर्य मास और चन्द्र मास का अन्तर (**३०** $\frac{१}{२}$ दिन –**२९** $\frac{३२}{६२}$ दिन) $\frac{६१}{६२}$ दिन) लगभग होते हैं, जिन्हें ३० महीनों के साथ गुणा करने से **२९** $\frac{३२}{६२}$ दिन का अन्तर आएगा। इस कारण ३० महीनों के बाद ३१वां, फिर ३० महीनों के बाद ६२वां चन्द्र मास अधिक लेने की प्रचलित परम्परा सबको पता है। किन्तु अभी इस परम्परा में प्रत्यक्ष के साथ समस्या आने के कारण हमने छोड़ दी होगी, ऐसा लगता है।

यह सुप्रचलित है कि प्राचीन काल में पोष और आषाढ़ महीने ही अधिक मास के रूप में आते थे, किन्तु लच्छवी शासन के लेखों से जानकारी मिलती है, कि २ $\frac{१}{२}$ वर्ष की जगह कुछ निश्चित संयोगों में ३ वर्ष में (लगातार दो पोष या आषाढ़) अधिक मास लिया जाता है, जिसकी जानकारी नीचे दी गई है। इस कारण **संस्कारयुक्त तिथि या नक्षत्र लेने के बावजूद भी सूर्य-चन्द्र के गणित में प्रत्यक्ष के साथ भेद न आए, ऐसी अधिक मास की व्यवस्था प्राचीन लच्छवी शासन में आती होगी, जो हम भूल चूके हैं**। वर्तमान काल में चन्द्र मास में सूर्य की राशि संक्राति न हो, उस मास को अधिक मास कहते हैं। उपरान्त आधुनिक खलोगशास्त्र के अनुसार प्रत्येक चन्द्र मास का माप बदलता है। चन्द्र मास छोटा होता है, और सूर्य प्रत्येक राशि में लगभग **३०** $\frac{१}{२}$ दिन रहता है (यह माप भी आधुनिक खलोगशास्त्र के अनुसार सतत बदलता है) इस प्रकार यह माप बड़ा होने के कारण पूरे महीने में सूर्य की राशि संक्रान्ति न हो, वहाँ अधिक मास आता है। इस परम्परा के अनुसार लगभ ३२.५ महीनों में, या कभी कम–ज्यादा समय में भी अधिक मास आता है। यह परम्परा **सूर्य की राशि की संक्रान्ति** के साथ जुड़ी हुई है। इसकी जानकारी इस प्रकार है :–

The difference between one year of earth & 12 months of Moon is 10.8992 days = 11 days.

Therefore every year lunar months comes 11days earlier but in 3 years this difference reaches upto 33 days, which is more than one month. We call this as Adhik Masa.

Year	Month	Year	Month	Year	Month	Year	Month	Year	Month	Year	Month
1966	Shravan	2	9	1982	Ashwin	2	4	1999	Jyeshtha	2	11
1969	Ashadh	2	11	1985	Shravan	2	10	2001	Ashwin	2	4
1972	Vaishakh	2	10	1988	Jyeshtha	2	10	2004	Shravan	2	10
1974	Bhadra	2	4	1991	Vaishakh	2	11	2007	Jyeshtha	2	10
1977	Shravan	2	11	1993	Bhadra	2	4	2010	Vaishakh	2	11
1980	Jyeshtha	2	10	1996	Ashadh	2	10	2012	Bhadrapad	2	4

Generally Adhik Masa comes after an interval of 2 years and 4 months, 2 years and 9 months, 2 years and 10 months or 2 years and 11 months. On an average Adhik Maas comes in 2 years and 8.5 months. This value can be verfied dividing the duration of month i.e. 29.5 days by 10.9. Lunar year is 10.9 days smaller than solar year therefore after dividing 29.53/10.9=2 years and 8.5 months there arises a difference of one month.

अतः यह भी स्थूल गणित ही हुआ, इसीलिए अमुक वर्ष को क्षय मास लेना पड़ता है ।

वर्तमान में शास्त्रों में प्राप्त परम्परा के अनुसार अयन की (उत्तरायण / दक्षिणायन की) समाप्ति के समय $२\frac{१}{२}$, $२\frac{१}{२}$ वर्ष में पोष और आषाढ़ में ही अधिक मास आते हैं, तो इस प्रकार ५० वर्ष में २० अधिक मास आते हैं । यह गणित भी स्थूल ही था ।

प्रस्तुत में प्रकट की गई लच्छवी शासन के राजाओं द्वारा प्रवर्तित **सूक्ष्म गणित** पर आधारित अधिक मास की प्रक्रिया में अयन के अन्त में ही, किन्तु कभी $२\frac{१}{२}$ **तो कभी ३ वर्ष में अधिक मास आता है,** जिससे प्रत्यक्ष आकाश के साथ भेद नहीं आता, क्षय मास नहीं आता, उपरान्त इसमें मात्र २ वर्ष ८ महीनों की एवरेज के लौकिक गणित का सेटिंग कभी $२\frac{१}{२}$ वर्ष तो कभी ३ वर्ष में होता है ।

उपरान्त यहाँ यह बात ध्यान रखने की है, कि **आर्य संस्कृति और जैन संस्कृति नक्षत्र गणित को मानने वाली परम्परा है, इसलिए सूर्य के अयन परिवर्तन को अधिक मास मानते थे, राशि परिवर्तन को नहीं।** गीतार्थों को इस सन्दर्भ में विशेष संशोधन करना चाहिए।

शिवराज आचार्य की वेदांग ज्योतिष नामक पुस्तक में गा. ३७ में P. ४०३ से ४०७ में इस प्रकार का उल्लेख है, जो नीचे दिया गया है :

उक्तविधे व्यतिकरे न हि सर्वेषु पञ्चवर्षात्मकेषु युगेषु प्रतियुगार्धमधिक-मासो नियमेन योज्यते, यथावश्यकं यथौचित्येव चाऽधिकमासो योज्यते। किन्तु यदायदाऽधिकमासो योज्यते तदातदाऽयनान्ते एव शुचौ मासे (आषाढे) वा सहस्ये मासे (पौषे) वा द्वितीयशुचिमासरूपेण (द्वितीयाषाढरूपेण) वा द्वितीयसहस्यमास-रूपेण (द्वितीयपौषरूपेण) वैवाऽधिकमासो योज्यते, नाऽयनमध्येऽन्येषु मासेष्विति बोध्यम्। एतादृशी व्यवस्था च यदा दृक्सिद्धसौरायनारम्भदिने कृष्णपक्षस्य दशमी

सभाष्ये सव्याख्याने च वेदाङ्गज्योतिषे

वा ततः परा वा तिथिर् भवति तदैव तेन कृष्णपक्षेण युक्तोऽमावास्यान्तो मासो-ऽधिको मास इति स्वीक्रियते, यदा तु दृक्सिद्धसौरायनारम्भदिने कृष्णपक्षस्य नवमी वा ततः पूर्वा वा तिथिर् भवति तदा तु तेन कृष्णपक्षेण युक्तोऽमावास्यान्तो मासोऽधिको मास इति न स्वीक्रियते इति सूचकाभ्यां वचनाभ्यां नेपालशासनकेन्द्र-रूपे काष्ठमण्डपमहानगरे स्थिते राष्ट्रियाऽभिलेखालये सङ्गृहीते द्रोणकृते रत्न-करण्डिकाख्ये प्राचीने स्मृतिसमुच्चयत्वेनोक्ते धर्मशास्त्रनिबन्धे (सूक्ष्मच्छायाचित्रा-धारपत्रकस्थप्रतिलिपिसङ्ख्या बी ३३/१२) एकादशीप्रकरणे २०९तमे पत्रे पूर्वपृष्ठे दृश्याभ्यां वचनाभ्यां स्पष्टतयाऽवगम्यते। तथाहि—

कृष्णपक्षे दशम्यादौ मेध्यं गच्छेद् दिवाकरः।
द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥ इति,

दशमीमभ्यतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः।
द्विराषाढः स (न) विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥ इति च।

तत्र मेध्यमित्यस्य निरूढपशुबन्धरूपमेधहितमयनमुखरूपं कालमित्यर्थोऽव-गम्यते। एवं च यदा गताद् अधिमासाच् चान्द्रेषु त्रिंशति मासेषु व्यतीतेषु एकत्रिंशस्य मासस्य कृष्णपक्षस्य दशम्याः पूर्वमेव नवम्यां वा ततः पूर्वमेव वा सूर्योऽयनान्तरं गच्छति तदा तेन कृष्णपक्षेण सहितश् चान्द्रो मासोऽधिमास इति न स्वीक्रियते, तत

उत्तरस्याऽयनस्याऽन्ते गताद् अधिमासाच् चान्द्रेषु त्रिषु वर्षेषु व्यतीतेष्वेवाऽधिकमासः स्वीक्रियते। एवं च चान्द्राणां तपस्-तपस्यादीनां मासानां शिशिरादीनामृतूनां च सौरैर् ऋतुभिः सदैव सम्बद्धत्वं यथावत् तिष्ठति, नैव तत्र सुदूरविप्रकर्षो भवति।

उदाहरणेनाऽप्ययं विषयः स्पष्टीक्रियते। तत्र वेङ्कटेश्वर-शताब्दीपञ्चाङ्गे २०१४तमे वैक्रमाब्दे १८७९तमे शकाब्दे १९५७तमे क्रैस्ताब्दे दिसम्बरमासस्य २१तमे दिवसे सौरस्य दृक्सिद्धस्योदगयनस्य शुक्लप्रतिपदश् च सामीप्येन स्थितिर् दृश्यते। इयमेव शुक्लप्रतिपद् वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थानुसारं तपःशुक्लप्रतिपद् (माघशुक्लप्रतिपद्) अस्ति। ततः प्रवर्तते वैदिकानां वर्षम्। ततः प्रभृति त्रिंशति चान्द्रमासेषु गतेषु २०१७तमे वैक्रमाब्दे १८८२तमे शकाब्दे १९६०तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २६तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०१९तमे वैक्रमाब्दे १८८४तमे शकाब्दे १९६२तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २७तमे दिवसे अमावास्योत्तरशुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रेषु वर्षेषु) व्यतीतेषु २०२२तमे वैक्रमाब्दे १८८७तमे

शकाब्दे १९६५तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २३तमे दिवसे अमावास्योत्तरशुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०२५तमे वैक्रमाब्दे १८९०तमे शकाब्दे १९६८तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २७तमे दिवसे अमावास्यागतशुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रवर्षेषु) व्यतीतेषु २०२८तमे वैक्रमाब्दे १८९३तमे शकाब्दे १९७१तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २५तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु गतेषु २०३०तमे वैक्रमेऽब्दे १९९५तमे शकाब्दे १९७३तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २५तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रवर्षेषु) व्यतीतेषु २०३३तमे वैक्रमाब्दे १८९८तमे शकाब्दे १९७६तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २२तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिको मासः

(द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चाद्रमासेषु व्यतीतेषु २०३६तमे वैक्रमेऽब्दे १९०१तमे शकाब्दे १९७९तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २६तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०३८तमे वैक्रमाब्दे १९०३तमे शकाब्दे १९८१तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २७तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रवर्षेषु) व्यतीतेषु २०४१तमे वैक्रमाब्दे १९०६तमे शकाब्दे १९८४तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २३तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकाना-मधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु गतेषु २०४४तमे वैक्रमाब्दे १९०९तमे शकाब्दे १९८७तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २८तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिक-मासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रवर्षेषु) व्यतीतेषु २०४७तमे वैक्रमाब्दे १९१२तमे शकाब्दे १९९०तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २५तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्-नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०४९तमे वैक्रमाब्दे १९१४-तमे शकाब्दे १९९२तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २५तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि

वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्-नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रेषु वर्षेषु) व्यतीतेषु २०५२तमे वैक्रमाब्दे १९१७तमे शकाब्दे १९९५तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २३तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०५५तमे वैक्रमाब्दे १९२०तमे शकाब्दे १९९८तमे क्रैस्ताब्दे मईमासस्य २६तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः शुचिमासः द्वितीय आषाढो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं त्रिंशति चान्द्रमासेषु व्यतीतेषु २०५७-तमे वैक्रमाब्दे १९२२तमे शकाब्दे २०००तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २६तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते। तस्मिन्नधिकमासे पूर्णे ततः परं षट्त्रिंशति चान्द्रमासेषु (त्रिषु चान्द्रेषु

वर्षेषु) व्यतीतेषु २०६०तमे वैक्रमाब्दे १९२५तमे शकाब्दे २००३तमे क्रैस्ताब्दे नवम्बरमासस्य २४तमे दिवसे शुक्लप्रतिपदि वैदिकानामधिकमासः (द्वितीयः सहस्यमासः द्वितीयः पौषो वा) प्रवर्तते इति ज्ञेयम्।

भारतवर्षे यावनस्य ज्योतिषस्य प्रचारात्, शकानां शासनस्य स्थापनायाः कालाच् च प्रागेव मागधशासकातिक्रमणादिकैः कारणैर् नेपालोपत्यकां प्रविष्टैर् वैशाल्या लिच्छविभिः शासकैर् भारतवर्षीया मौलिकी वैदिकी कालगणनापद्धतिर् नेपालदेशमानीता चिराय सुरक्षिता चाऽवगम्यते। नेपालदेशस्येतिहासे लिच्छवीनां शिलालेखेषु केवलमाषाढे पौषे चाऽधिमासो दृश्यते, तत्र ४३५ इत्यङ्किते (५६९ वैक्रमाब्दे), ५१९ इत्यङ्किते (६५३वै.), ३१ इत्यङ्किते (६६४वै.), ३४ इत्यङ्किते (६६७ वै.) च वर्षे पौषेऽधिमासो दृश्यते; प्राचीनलेख्येषु ५४७तमे, ५५५तमे च नेपालवर्षेऽपि (१४८३ वै. १४९१ वै.) पौषेऽधिमासो दृश्यते; ५९८तमे ६०१तमे च नेपालवर्षे (१५३५ वै., १५३८ वै.) आषाढेऽधिमासो दृश्यते; ६०४तमे नेपालवर्षे (१५४० वै.) पौषेऽधिमासो दृश्यते, ६५२तमे ६५५तमे च नेपालवर्षे (१५८९ वै., १५९२ वै.) आषाढेऽधिमासो दृश्यते इति च स्मरणीयम्। इत्थं नेपालदेशे वैक्रमाब्दानां षष्ठात् शतकात् प्रभृति षोडशं शतकं यावद् वेदाङ्गज्योतिषस्य अयनान्त एवाऽधिमास उपजायते इति सिद्धान्तमनुसृत्य आषाढे पौषे चैवाधिमासः स्वीक्रियते स्मेत्यपि स्पष्टं भवति। तत्र लिच्छविशासने पूर्वकाले प्रयुक्तः संवत्सरो वर्तमानशकसंवत्सरोऽस्तीति प्रमोदवर्धनेन निर्णीतम्; सुमतितन्त्रपुस्तकादिषु प्राप्येषु केषुचिल्लेखेषु मानदेवाब्द इति नाम्नोल्लिखितो लिच्छविशासने उत्तरकाले प्रयुक्तः संवत्सरस् तु ६३३तमे वैक्रमेऽब्दे प्रारब्धः संवत्सर इति कैश्चिदुक्तम्,

अधिकमासोपजन्मकारणम्

किन्तु सः ६३४तमे वैक्रमेऽब्दे (५७७तमे क्रैस्ताब्दे) प्रारब्ध इत्यपि प्रमोदवर्धनेनैव निर्णीतम्। तदनुसारमेव चाऽत्र कोष्ठकेषु वैक्रमाब्दा उल्लिखिता बोध्याः।

इस प्रकार : १) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में, २) ३ वर्ष में,

३) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में, ४) ३ वर्ष में,

५) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में, ६) ३ वर्ष में,

७) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में, ८) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में,

९) ३ वर्ष में, १०) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में,

११) ३ वर्ष में, १२) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में,

१३) ३ वर्ष में, १४) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में,

१५) $२\frac{१}{२}$ वर्ष में, १६) ३ वर्ष में,

इस क्रम से अधिक मास आएगा । ऐसा करने से आकाश के साथ कभी भी भेद नहीं आएगा, यह बात लच्छवी शासन के शिलालेख कहते हैं ।

• इस प्रकार अधिक मास की व्यवस्था आज भी की जा सकती है ।

• जिनागमों में जैन पंचांग का तिथि गणित, अधिक मास का गणित और नक्षत्र गणित आज भी उपलब्ध है, मात्र परस्पर संवाद, सहकार और देव-गुरु के अनुग्रह से इसे सामने लाना हम सबका कर्तव्य है। अब प्रश्न यह है, कि यदि सारा ज्ञान और परम्परा विद्यमान ही है, तो क्या उपरोक्त पद्धत्ति से जैन पंचांग का निर्माण करना सम्भव है ? यदि हाँ, तो इसकी पद्धत्ति क्या है ? तो उत्तर है कि जैन पंचांग का निर्माण आज भी सम्भव है । इसकी पद्धत्ति आनेवाले प्रकरणमें दी गई है ।

नूतन पंचांग निर्माण प्रक्रिया

सबसे पहले :–

१) पंचांग की शुरूआत कब से करनी ? कौनसी तिथि से करनी ? और कौनसे सम्वत् से करनी ? यह तय करें ।

२) वर्तमान के साथ समन्वय करने के लिए तिथि के साथ तारीख और वार का मेल भी आवश्यक है, इसलिए पंचांग की शुरूआत में कौनसी तारीख और कौनसा वार लेना चाहिए, यह तय करें ।

३) पंचांग में सूर्य और चन्द्र की राशि का (नक्षत्र का) भी उपयोग महत्त्व रखता है, इसलिए पंचांग की शुरूआत में कौनसे नक्षत्र थे, यह तय करें ।

४) पंचांग निर्माण हेतु ज्योतिषात्मक ग्रहचार का ज्ञान भी आवश्यक है, इसकी जानकारी प्राप्त करें ।

अब , Jet Propulsion Laboratory Development Ephemeris (JPLDE) द्वारा साल 1970 में नासा-स्विस आदि के सहकार से DE-430, DE-431 लॉन्च किया गया था । अवकाशीय पदार्थों के उचित स्थानादि बताने और दिन–प्रतिदिन के एस्ट्रोनॉमी डेटा को बताने हेतु इसकी रचना हुई थी । DE-430 में 1100 वर्षों का डेटा प्राप्त होता है, जबकि DE-431 में लगभग ३०,००० वर्षों का प्रतिदिन का अवकाशीय पदार्थों का डेटा प्राप्त होता है । जैन पंचांग के निर्माण हेतु संस्कार की लुप्त परम्परा पुनर्जीवित करने के बाद भी उस संस्कार का प्रारम्भिक बिन्दु कहाँ से लेना चाहिए, यह एक बड़ा प्रश्न है । इस हेतु प्रभु वीर का निर्वाण या पंचम आरे की शुरूआत का बिन्दु सर्वाधिक विश्वसनीय विकल्प है । इसलिए वहाँ से संस्कार करके पंचांग का निर्माण होना चाहिए । अब इतने वर्षों पूर्व का डेटा DE-430 से नहीं मिलेगा, इसलिए DE-431 का उपयोग अनिवार्य है । किन्तु DE-430 की तुलना में DE-431 का डेटा कम Accurate है । इसकी जानकारी इस प्रकार है ।

The Planetary and Lunar Ephemerides DE430 and DE431

William M. Folkner,* James G. Williams,† Dale H. Boggs,†
Ryan S. Park,* and Petr Kuchynka*

ABSTRACT. — The planetary and lunar ephemerides DE430 and DE431 are generated by fitting numerically integrated orbits of the Moon and planets to observations. The present-day lunar orbit is known to submeter accuracy through fitting lunar laser ranging data with an updated lunar gravity field from the Gravity Recovery and Interior Laboratory (GRAIL) mission. The orbits of the inner planets are known to subkilometer accuracy through fitting radio tracking measurements of spacecraft in orbit about them. Very long baseline interferometry measurements of spacecraft at Mars allow the orientation of the ephemeris to be tied to the International Celestial Reference Frame with an accuracy of 0″.0002. This orientation is the limiting error source for the orbits of the terrestrial planets, and corresponds to orbit uncertainties of a few hundred meters. The orbits of Jupiter and Saturn are determined to accuracies of tens of kilometers as a result of fitting spacecraft tracking data. The orbits of Uranus, Neptune, and Pluto are determined primarily from astrometric observations, for which measurement uncertainties due to the Earth's atmosphere, combined with star catalog uncertainties, limit position accuracies to several thousand kilometers. DE430 and DE431 differ in their integrated time span and lunar dynamical modeling. The dynamical model for DE430 included a damping term between the Moon's liquid core and solid mantle that gives the best fit to lunar laser ranging data but that is not suitable for backward integration of more than a few centuries. The ephemeris DE431 is similar to DE430 but was fit without the core/mantle damping term, so the lunar orbit is less accurate than in DE430 for times near the current epoch, but is more suitable for times more than a few centuries in the past. DE431 is a longer integration (covering years –13,200 to +17,191) than DE430 (covering years 1550 to 2650).

I. Introduction

The planetary and lunar ephemeris DE430 succeeds the ephemeris DE421 [1] and its precursor DE405 [2] as a general purpose ephemeris. Several interim ephemerides have been released since DE421 with specific improvements in estimates of the orbits of Mercury, Mars, and Saturn intended primarily to support the Mercury Surface, Space Environment,

---

* Mission Design and Navigation Section.
† Tracking Systems and Applications Section.

The research described in this publication was carried out by the Jet Propulsion Laboratory, California Institute of Technology, under a contract with the National Aeronautics and Space Administration. © 2014 California Institute of Technology. U.S. Government sponsorship acknowledged.

अब, जिनमतानुसार पंचांग की शुरूआत युगारम्भ के बिन्दु समान पंचम आरे की शुरूआत, अर्थात् श्रा.व. १, पुष्य में स्थित सूर्य के दक्षिणायन और अभिजिन स्थित चन्द्र के उत्तरायण से होगी ।

प्रभुवीर के निर्वाण, का.व. ०) से ३ वर्ष ८ $\frac{१}{२}$ महीने = श्रा.वद-१ से पंचम आरे की शुरूआत होती है ।

उक्तं हि – सावणबहुलपडिवए, बालवकरणे, अभीइनक्खत्ते सव्वत्थ पढम समए, जुगस्स आइं विआणाहि । सर्वत्रेति भरतैरावतविदेहेषु भाव्यम् अवसर्पिण्यां षण्णामरकाणाम् अप्यादिरत्रैव ।।

और ``किञ्च सर्वबाह्यमंडलस्थस्य पुष्यस्य भोगः सूर्याचंद्रमसो-स्सर्वाभ्यंतरमंडलस्थयोः स्यात् । तथा सर्वाभ्यंतरमंडलस्थिताभिजिद्भोगः सर्वबाह्ये मंडले तयोः स्यादित्यत्रायनापेक्षो भोगो न तु मंडलैकत्वं कारणम् ।'' मंडल प्रकरण गा. ७९ की टीका ।

इसके उपरान्त **क्षेत्र लोक प्रकाश के सर्ग–२० की गाथा ४६६–४६७** में भी पांचवें आरे की शुरूआत में ही सूर्य का दक्षिणायन और चन्द्र का उत्तरायण शुरू होता है, ऐसा दिखाया है ।

आज से २५४७ वर्ष पूर्व प्रभु का निर्वाण हुआ, उसमें ३ वर्ष ८ $\frac{१}{२}$ महीने जोड़ें, अर्थात् २५४४ वर्ष पूर्व पांचवें आरे की शुरूआत हुई । अर्थात् २५४४ वर्ष में से ई.सं. २०२० निकालें, तो **५२४ वर्ष B.C. पंचम आरे की शुरूआत माननी पड़े ।**

अर्थात् ५२४ वर्ष B.C. की श्रावण वदी-१ के

दक्षिणायन में प्रवेश करता सूर्य पुष्य के (कर्क के) ६°४२' पर हो,

उत्तरायन में प्रवेश करता चन्द्र अभिजित के (मकर के) ६°४२' पर हो, उस समय आषाढ़ सुदी-१५ पूर्ण हो, फिर अनन्तर समय पर तुरन्त श्रा.व.१ शुरू हो । इसी प्रकार का अवकाश DE-431 निर्दिष्ट 524 B.C. २२/६ (२८/६) के डेटा में दिया गया है । मात्र १-२ घण्टे या सूर्य-चन्द्र की १-२ डिग्री का भेद डेटा की Accuracy के अभाव के कारण है । इसकी जानकारी इस प्रकार है ।

ASTRODIENST EPHEMERIS for the year 524 BCE

JUNE 524 BCE (-523) JC बु शु मं गु श राहु 00:00 UT

Day	Sid.t	⊙	☽	☿	♀	♂	♃	♄	♅	♆	♇	☊	☊	⚸	⚷	Day
S 1	16 13 17	3♊12'03	0♑40	12♉13	9♉30	28°R23	25♋49	28♌33	7°R 1	6♍ 0	14♋19	14°R45	15♒53	4♏ 4	n.a.	S 1
S 2	16 17 13	4° 9'08	13° 5	13°31	10°42	28♐16	25°59	28°36	6♑59	6° 0	14°21	14♒38	15°49	4°11	n.a.	S 2
M 3	16 21 10	5° 6'13	25°41	14°54	11°55	28° 9	26° 9	28°38	6°57	6° 0	14°22	14°35	15°46	4°18	n.a.	M 3
T 4	16 25 6	6° 3'19	8♒30	16°20	13° 7	28° 0	26°20	28°41	6°55	6° 1	14°24	14°33	15°43	4°24	n.a.	T 4
W 5	16 29 3	7° 0'25	21°34	17°50	14°20	27°51	26°30	28°44	6°53	6° 1	14°25	14°D33	15°40	4°31	n.a.	W 5
T 6	16 32 59	7°57'31	4♓58	19°23	15°33	27°42	26°40	28°46	6°51	6° 1	14°27	14°R33	15°37	4°38	n.a.	T 6
F 7	16 36 56	8°54'38	18°42	21° 1	16°45	27°32	26°51	28°49	6°49	6° 2	14°28	14°33	15°34	4°45	n.a.	F 7
S 8	16 40 52	9°51'46	2♈49	22°41	17°58	27°21	27° 2	28°52	6°47	6° 2	14°30	14°31	15°30	4°51	n.a.	S 8
S 9	16 44 49	10°48'54	17°17	24°25	19°11	27° 9	27°12	28°55	6°45	6° 3	14°32	14°27	15°27	4°58	n.a.	S 9
M10	16 48 46	11°46'03	2♉ 4	26°13	20°23	26°57	27°23	28°59	6°43	6° 3	14°33	14°20	15°24	5° 5	n.a.	M10
T11	16 52 42	12°43'13	17° 2	28° 3	21°36	26°45	27°34	29° 2	6°41	6° 4	14°35	14°12	15°21	5°12	n.a.	T11
W12	16 56 39	13°40'23	2♊ 4	29°56	22°49	26°31	27°45	29° 5	6°39	6° 4	14°36	14° 3	15°18	5°18	n.a.	W12
T13	17 0 35	14°37'34	17° 1	1♊52	24° 2	26°18	27°56	29° 9	6°37	6° 5	14°38	13°55	15°14	5°25	n.a.	T13
F14	17 4 32	15°34'46	1♋41	3°51	25°15	26° 4	28° 7	29°12	6°35	6° 6	14°40	13°47	15°11	5°32	n.a.	F14
S15	17 8 28	16°31'58	16° 0	5°51	26°28	25°49	28°18	29°16	6°33	6° 6	14°41	13°42	15° 8	5°38	n.a.	S15
S16	17 12 25	17°29'10	29°53	7°54	27°41	25°35	28°30	29°19	6°30	6° 7	14°43	13°39	15° 5	5°45	n.a.	S16
M17	17 16 22	18°26'23	13♌18	9°58	28°54	25°19	28°41	29°23	6°28	6° 8	14°45	13°D38	15° 2	5°52	n.a.	M17
T18	17 20 18	19°23'36	26°17	12° 3	0♊ 7	25° 4	28°52	29°27	6°26	6° 9	14°47	13°39	14°59	5°59	n.a.	T18
W19	17 24 15	20°20'49	8♍53	14° 9	1°20	24°48	29° 4	29°31	6°24	6°10	14°48	13°40	14°55	6° 5	n.a.	W19
T20	17 28 11	21°18'03	21°11	16°16	2°33	24°32	29°15	29°35	6°21	6°10	14°50	13°R40	14°52	6°12	n.a.	T20
F21	17 32 8	22°15'17	3♎16	18°23	3°46	24°17	29°27	29°39	6°19	6°11	14°52	13°40	14°49	6°19	n.a.	F21
S22	17 36 4	23°12'32	15°12	20°30	4°59	24° 0	29°38	29°43	6°17	6°12	14°53	13°37	14°46	6°25	n.a.	S22
S23	17 40 1	24° 9'48	27° 5	22°37	6°12	23°44	29°50	29°47	6°14	6°13	14°55	13°33	14°43	6°32	n.a.	S23
M24	17 43 57	25° 7'04	8♏57	24°44	7°25	23°28	0♌ 2	29°52	6°12	6°14	14°57	13°26	14°40	6°39	n.a.	M24
T25	17 47 54	26° 4'21	20°53	26°50	8°39	23°12	0°13	29°56	6°10	6°15	14°59	13°18	14°36	6°46	n.a.	T25
W26	17 51 51	27° 1'38	2♐56	28°55	9°52	22°56	0°25	0♍ 0	6° 7	6°16	15° 1	13°10	14°33	6°52	n.a.	W26
T27	17 55 47	27°58'57	15° 6	0♋59	11° 5	22°40	0°37	0° 5	6° 5	6°17	15° 2	13° 2	14°30	6°59	n.a.	T27
F28	17 59 44	28°56'16	27°26	3° 2	12°19	22°24	0°49	0°10	6° 3	6°18	15° 4	12°54	14°27	7° 6	n.a.	F28
९ S29	18 3 40	29°53'37	9♑56	5° 3	13°32	22° 9	1° 1	0°14	6° 0	6°19	15° 6	12°49	14°24	7°13	n.a.	S29
S30	18 7 37	0♋50'58	22♑37	7♋ 3	14♊45	21♐54	1♌13	0♍19	5♑58	6♍20	15♋ 8	12♒45	14♒20	7♏19	n.a.	S30

सूर्य चंद्र

टिप्पण : ९. पांचवें आरे की शुरूआत श्रा.व.९ से

सूर्य चंद्र

બુ શુ મં ગુ શ. રા.

Day	☉ decl	☽ decl	☽ lat	☿ decl	☿ lat	♀ decl	♀ lat	♂ decl	♂ lat	♃ decl	♃ lat	♄ decl	♄ lat	♅ decl	♅ lat	♆ decl	♆ lat	♇ decl	♇ lat	☊ decl	☊ decl	⚸ decl	⚷ decl	⚷ lat
S 1	21n 5	27s16	3s30	13n21	2s28	13n42	1s12	27s49	4s 4	22n15	1n 0	14n16	2n17	24s 1	0s27	10n56	1n37	1n18	8n22	16s38	16s17	17s46		n.a.
S 2	21 16	25 44	2 39	13 56	2 17	14 7	1 10	27 53	4 8	22 13	1 0	14 15	2 17	24 2	0 27	10 56	1 37	1 17	8 22	16 40	16 18	17 49		n.a.
M 3	21 26	22 54	1 38	14 31	2 6	14 32	1 8	27 58	4 13	22 11	1 0	14 14	2 17	24 2	0 27	10 56	1 37	1 17	8 22	16 41	16 19	17 51		n.a.
T 4	21 36	18 54	0 32	15 7	1 54	14 56	1 6	28 2	4 18	22 9	1 0	14 13	2 16	24 2	0 27	10 56	1 37	1 17	8 22	16 41	16 20	17 54		n.a.
W 5	21 46	13 55	0n37	15 44	1 43	15 20	1 4	28 7	4 23	22 7	1 0	14 12	2 16	24 2	0 27	10 55	1 37	1 17	8 22	16 41	16 21	17 56		n.a.
T 6	21 56	8 10	1 46	16 22	1 30	15 44	1 2	28 12	4 27	22 4	1 0	14 11	2 16	24 2	0 27	10 55	1 37	1 16	8 22	16 41	16 22	17 59		n.a.
F 7	22 5	1 54	2 51	17 0	1 18	16 7	1 0	28 16	4 32	22 2	0 59	14 10	2 16	24 2	0 27	10 55	1 37	1 16	8 22	16 41	16 23	18 1		n.a.
S 8	22 14	4n36	3 47	17 38	1 6	16 29	0 58	28 20	4 36	22 0	0 59	14 8	2 16	24 2	0 27	10 55	1 37	1 16	8 22	16 42	16 24	18 4		n.a.
S 9	22 22	11 2	4 31	18 16	0 54	16 52	0 55	28 25	4 41	21 58	0 59	14 7	2 16	24 2	0 27	10 55	1 37	1 16	8 22	16 43	16 25	18 6		n.a.
M10	22 30	16 59	4 57	18 54	0 41	17 14	0 53	28 29	4 45	21 56	0 59	14 6	2 15	24 3	0 27	10 54	1 37	1 15	8 21	16 45	16 26	18 9		n.a.
T11	22 38	21 59	5 3	19 31	0 29	17 35	0 51	28 33	4 50	21 54	0 59	14 4	2 15	24 3	0 27	10 54	1 37	1 15	8 21	16 47	16 27	18 11		n.a.
W12	22 45	25 34	4 49	20 8	0 17	17 57	0 48	28 37	4 54	21 51	0 59	14 3	2 15	24 3	0 27	10 54	1 37	1 15	8 21	16 50	16 28	18 14		n.a.
T13	22 52	27 21	4 15	20 44	0 5	18 17	0 46	28 40	4 58	21 49	0 59	14 2	2 15	24 3	0 27	10 53	1 36	1 15	8 21	16 52	16 29	18 16		n.a.
F14	22 58	27 10	3 25	21 18	0n 6	18 37	0 44	28 44	5 2	21 47	0 59	14 0	2 15	24 3	0 27	10 53	1 36	1 14	8 21	16 55	16 30	18 19		n.a.
S15	23 4	25 8	2 22	21 52	0 17	18 57	0 41	28 48	5 6	21 45	0 59	13 59	2 15	24 3	0 27	10 53	1 36	1 14	8 21	16 56	16 31	18 21		n.a.
S16	23 10	21 38	1 13	22 23	0 28	19 17	0 39	28 51	5 10	21 42	0 59	13 57	2 14	24 3	0 28	10 53	1 36	1 14	8 21	16 57	16 32	18 23		n.a.
M17	23 15	17 5	0 2	22 52	0 38	19 35	0 36	28 54	5 14	21 40	0 59	13 56	2 14	24 3	0 28	10 52	1 36	1 14	8 21	16 57	16 33	18 26		n.a.
T18	23 20	11 52	1s 7	23 20	0 48	19 54	0 34	28 57	5 17	21 37	0 59	13 54	2 14	24 4	0 28	10 52	1 36	1 14	8 21	16 57	16 34	18 28		n.a.
W19	23 24	6 19	2 11	23 45	0 57	20 11	0 32	29 0	5 21	21 35	0 59	13 53	2 14	24 4	0 28	10 52	1 36	1 13	8 21	16 57	16 35	18 31		n.a.
T20	23 28	0 40	3 8	24 7	1 5	20 28	0 29	29 3	5 24	21 33	0 59	13 51	2 14	24 4	0 28	10 51	1 36	1 13	8 21	16 57	16 35	18 33		n.a.
F21	23 32	4s53	3 54	24 27	1 13	20 45	0 27	29 5	5 27	21 30	0 59	13 50	2 14	24 4	0 28	10 51	1 36	1 13	8 21	16 57	16 36	18 36		n.a.
S22	23 35	10 13	4 30	24 44	1 20	21 1	0 24	29 7	5 30	21 28	0 59	13 48	2 13	24 4	0 28	10 50	1 36	1 13	8 21	16 58	16 37	18 38		n.a.
S23	23 38	15 8	4 55	24 59	1 26	21 17	0 22	29 9	5 33	21 25	0 59	13 46	2 13	24 4	0 28	10 50	1 36	1 12	8 21	16 59	16 38	18 40		n.a.
M24	23 40	19 29	5 6	25 11	1 31	21 32	0 19	29 11	5 36	21 22	0 59	13 45	2 13	24 4	0 28	10 50	1 36	1 12	8 21	17 1	16 39	18 43		n.a.
T25	23 42	23 6	5 4	25 19	1 36	21 46	0 16	29 13	5 39	21 20	0 59	13 43	2 13	24 4	0 28	10 49	1 36	1 12	8 21	17 3	16 40	18 45		n.a.
W26	23 44	25 45	4 49	25 25	1 40	22 0	0 14	29 15	5 41	21 17	0 59	13 41	2 13	24 5	0 28	10 49	1 36	1 12	8 21	17 5	16 41	18 48		n.a.
T27	23 45	27 14	4 21	25 29	1 43	22 13	0 11	29 16	5 43	21 15	0 59	13 39	2 13	24 5	0 28	10 48	1 36	1 11	8 21	17 8	16 42	18 50		n.a.
F28	23 45	27 24	3 40	25 29	1 46	22 26	0 9	29 17	5 45	21 12	0 59	13 38	2 12	24 5	0 28	10 48	1 36	1 11	8 21	17 10	16 43	18 52		n.a.
S29	23 46	26 10	2 48	25 27	1 48	22 37	0 6	29 18	5 47	21 9	0 59	13 36	2 12	24 5	0 28	10 48	1 36	1 11	8 21	17 12	16 44	18 55		n.a.
S30	23n45	23s35	1s47	25n23	1n49	22n49	0s 4	29s19	5s49	21n 7	0n59	13n34	2n12	24s 5	0s28	10n47	1n36	1n11	8n21	17s13	16s45	18s57		n.a.

२

Julian Day Number = 1530183.5, Delta T = 04h45m17s

Ecliptic obliquity = 23°45'37, Nutation = 0°00'10

Ayanamsha: Fagan/Bradley = -10°18'15, Lahiri = -11°11'15 Julian Calendar 1 June 524 BCE == Greg. Calendar 26 May 524 BCE

४ ३

टिप्पण : २. चन्द्र का उत्तरायण, सूर्य का दक्षिणायन

३. तारीख का भेद

४. अयनांश का भेद (सायन–निरयन)

टिप्पण की समझ :–

(१) पांचवें आरे की शुरूआत श्रा.व.१ से है । यहाँ सूर्य और चन्द्र लगभग १८० डिग्री पर दिखाई देते हैं । सायन परम्परा के अनुसार **सूर्य मिथुन में और चन्द्र धन में** है, जबकि **निरयन** (हमारी) परम्परा के अनुसार **सूर्य कर्क में और चन्द्र मकर में** है, इसलिए पूनम पूर्ण होकर प्रतिपदा (एकम तिथि) शुरू हुई है । तो इधर सूर्यप्रज्ञप्ति के सूत्र ३७, ३८, और ३९ (१०वें प्राभृत का ५/६ प्राभृत–प्राभृत) बताते हैं कि आषाढ़ सुदी–१५ के उत्तराषाढ़ा नामक कुलसंज्ञक नक्षत्र में चन्द्र होता है, जो एफेमरीज के डेटा में दिखाई देता है ।

इसलिए २१ जून के उत्तराषाढ़ा में (मकर में) चन्द्र है, ऐसा पता चल ही रहा है, और अ. सु.–१५ के बाद तुरन्त श्रा.व. १ आती है ।

(२) चन्द्र दक्षिण में सुबह ५.३० बजे २७°२४' कला का दिखाई देता है, अभी चन्द्र थोड़ा दक्षिण में जाकर वापिस आएगा ।

सूर्य उत्तर में सुबह ५.३० बजे २३°४५' कला का दिखाया है, अभी सूर्य थोड़ा उत्तर में जाकर वापिस आएगा ।

इस प्रकार अब सूर्य का दक्षिणायन और चन्द्र का उत्तरायण शुरू होगा ।

(३) अभी हमारी तारीखें ग्रेग्रोरियन कैलेंडर के अनुसार चलती है । ये डेटा जूलियन कैलेंड के अनुसार है । उस समय जूलियन कैलेंडर के अनुसार **१ जून = २६ मई होती है,** इस प्रकार **२८ जून = २२ जून ग्रेगोरियन की तारीख आएगी । जब शुक्रवार आता है, तब पांचवें आरे की शुरूआत हुई ।**

(४) सायन से निरयन में जाने के लिए उस समय अयनांश **(+)** करने पड़ते हैं, अभी **(–)** करने पड़ते हैं । अयनांश में भी अनेक मतान्तर हैं, जो ``**नक्षत्र मीमांसा**'' नामक पुस्तक में दिए हैं, वहाँ से देख लें ।

⌘ प्रस्तुत में सूर्य २८°५६'१६" मिथुन का + १०°१८'१५" अयनांश = ९°१४'३१" कर्क का सूर्य है ।

⌘ चंद्र २७°२६' धनु का + १०°१८' अयनांश = ७°४४' मकर का है ।

अब मात्र एक–दो डिग्री अयनांश अलग हो या सूर्य–चन्द्र के स्थान में एक–दो डिग्री (२–३ घण्टे) का अंतर adjust करने से सूर्य–चन्द्र के अयनांश ६°४२' होते हैं, जो जैन मत के अनुसार अभिजित् शुरूआत है ।

सारिणी

Nakshatra	Initial Point (Equal div.)			Initial Point (Unequal div.)			Yogatara-with Nirayana Long. (After Burgess)				As Identified by the author	
	S	0	'	S	0	'		S	0	'		
Asvini	0	0	0	0	0	0	β Arictis	0	10	7	1	Meshasya
Bharani	0	13	20	0	13	11	41 Arictis	0	24	21	3	Meshasya
Krittika	0	26	40	0	19	46	η Tauri	1	0	8	20	Vrishasya
Rohini	1	10	0	1	2	56	α Tauri	1	15	56	1	Vrishasya
Mrigasiras	1	23	20	1	22	42	λ Orionis	1	29	51	11	Mrigasya
Ardra	2	6	40	2	5	53	α Orionis	2	4	54	2	Mrigasya
Punarvasu	2	20	0	2	12	28	β Geminor	2	29	22	1	Mithunasya
Pushya	3	3	20	3	2	14	δ Cancri	3	14	52	3	Karkatasya
Aslesha	3	16	40	3	15	25	δ Hydrac	3	18	29	2	Hrada-Sarpasya
Magba	4	0	0	3	22	0	α Leonis	4	5	58	1	Simhasya
P.Phalguni	4	13	20	4	5	11	δ Leonis	4	17	27	4	Simhasya
U.Phalguni	4	26	40	4	18	21	β Leonis	4	27	46	2	Simhasya
Hasta	5	10	0	5	8	7	δ Corvi	5	19	36	2	Karkatasya
Chitra	5	23	20	5	21	18	α Virginis	5	29	59	1	Kanyah
Svati	6	6	40	6	4	28	α Bootis	6	0	23		Nishthya
Visakha	6	20	0	6	11	3	α Libra	6	21	14	1	Tulasya
Anuradha	7	3	20	7	0	49	δ Scorpii	7	8	43	5	Vriscikasya
Jycstha	7	16	40	7	14	0	α Scorpii	7	15	54	1	Vriscikasya
Mula	8	0	0	7	20	35	λ Scorpii	8	0	44	2	Vriscikasya
P.Asadha	8	13	20	8	3	46	δ Sagittarii	8	10	43	3	Dhanusah
U.Asadha	8	26	40	8	16	56	α Sagittarii	8	18	32	2	Dhanusah
Abhijit		------	9	9	6	42	α Lyrac	8	21	27	1	Vinayalu
Sravana	9	10	0	9	10	57	α Aquilac	9	7	55	1	Garudasya
Dhanistha	9	23	20	9	24	7	β Delphini	9	22	29	1	Sravisthasya
Satabhisaj	10	6	40	10	7	18	λ Aquarii	10	17	43	7	Kumbhasya
P.Bhadrapada	10	20	0	10	13	53	α Pegasi	10	29	38	3	Pakshirajasya
U.Bhadrapada	11	3	20	10	27	4	γ Pegasi	11	15	18	1	Dhruvamatuh
Revati	11	16	40	11	16	49	ι Piscium	11	26	1	6	Minasya
Asvini	12	0	0	12	0	0						

५. अभी महत्त्व का मुद्दा यह है कि–

अयनबिंदु चलन आधुनिक खगोल में सुंदर तरीके से विकसित किया हुआ है ।

जिनआगम में चंद्र के अयनबिंदुचलन की बात स्पष्ट रूप से उपलब्ध है–

सूर्य के अयनबिंदु चलन की बात गर्भित रूप से उपलब्ध है ।

अयनबिंदु चलन=सूर्य–चंद्र की सायन / निरयन गति पद्धति ।

● जिनशासन की मान्यता अनुसार...

a. सूर्य–चंद्र का नक्षत्र साथ योग का कुल समय=**आधुनिक मान्यता अनुसार सायन गति ।**

b. सूर्य–चंद्र का मेरू की चारो ओर घुमने के साथ उत्तरायण–दक्षिणायन

की भ्रमणकक्षा को पूर्णरूप से पूर्ण करने का समय=**आधुनिक मान्यता अनुसार निरयन गति ।**

अभी इस सायन-निरयन गति की स्पष्टता प्रत्यक्ष आकाश से जानी जा सकती है, पर दोनों गतिओं के बीच का भेद=अयनबिंदु चलन, पूर्वकाल में ३३ विकला था जो आज ५०.३ विकला जितना जाना जाता है इसीलिए निश्चित माप न होने से अनुमानित माप को लें कर ही पूर्वकाल के पंचांग निर्माण होगे । और इसी वजह से सामान्य भेद की संभावना भी है ।

साथ ही लौकिकमास–अधिकमास की सूर्यसिद्धांत-वेदांग ज्योतिष विगेरे की परंपरा और हाल के पंचांग में मिलती स्विसअेफेमरीज डेटा के आधार पर करने में आती लौकिकमास–अधिकमास की परंपरा में भी भेद है, मास-वर्ष की गिनती मे वेदांग ज्योतिष, सूर्य सिद्धांत विगेरे हिंदुग्रंथ, सूर्यप्रज्ञप्ति–चंद्र प्रज्ञप्ति विगेरे जैन ग्रंथो, आधुनिक संशोधन से भूतकाल–भविष्यकाल को गणित की दृष्टि से जान कर तैयार किया हुआ अेफेमरीझ डेटा विगेरे की मास–वर्ष की मान्यता तथा ग्रीक–यवन–रोम संस्कृति के आधार से विकसित हुई ग्रेगोरीयन–जुलीयन विगेरे केलेन्डर (पंचांग) के मास–वर्ष की मान्यता सभी ही अलग–अलग है और इसीलिए जिनआगम में मिलतें मास–वर्ष–तिथि–नक्षत्र विगेरे के उपयोग से ही पंचांग बनाने में १००% सत्य बरकरार रेहता ही है पर वर्तमानकाल में लोक व्यवहार में फरजियात रूप से स्वीकृत हुए तारीख, वार–प्रचलित हिंदु मास (कारतक से आसो तक के), अंग्रेजीमास (जनवरी से दिसम्बर तक के) विगेरे के साथ तुलना करने में बाकी अन्य परंपरा की मूलभूत अधूरेपन के कारण से पंचांग संशोधनात्मक बनाना पडा है, ना के निर्णयात्मक ।

उदा.१. अेफेमरीज डेटा, के मुजब **५२८ B.C.** में **प्रभु महावीर का निर्वाण** और **५२४ B.C.** में **पांच वे आरे** की शुरूआत मानी है ।

यही घटना को **हिंदु परंपरा मुजब** हुए वर्ष–मास की गिनती से गिनतें **५२७ B.C. मे प्रभु महावीर का निर्वाण** तथा **५२३ B.C. में पांचमें आरे की शुरूआत** आएगी । इस तरह यह टर्मीनोलोजी का भेद है–तत्त्व का भेद नहीं, परंतु पंचांग निर्माण करते वक्त कौनसा विकल्प लेना जीससे कीसीको संशय न हुए ? वह संशोधन का विषय बनता है ।

उदा.२. इसी तरह अधिकमास की व्यवस्था में भी लिच्छवि राजा के नेपालस्थित शिलालेख, सूर्यसिद्धांत विगेरे प्राचीन हिंदु ग्रंथ, तथा वर्तमानकालीन गणित तिन्हों ही अलग–अलग जानकारी देते है इसलिए **तिन्हों का समन्वय**

और तुलना करने में १ महिने का सामान्य भेद आता है जो इस मुजब है...

a) शास्त्रीय श्रावण वद-१ प्रचलित अषाढ वद-१ से युगारंभ हुआ, अभी हमेशा अषाढ महिना जुलाई–अगस्ट में ही आता है। परंतु जो B.C. ५२४ श्रावण वद-१ (अ.व.१) को अेफेमेरीझ डेटा के साथ चेक करे तो जुन–जुलाई महिना आता है...इस प्रकार पहले से अंग्रेजी ओर हिंदु केलेन्डर में १ महिने का भेद है, जिनके समन्वय के लिए उन्ह–उन्ह परंपरा के इतिहास के भीतर में गहराइ से जानना चाहिए। **हिंदु या रोमन कोइ एक परंपरा के अधिकमास के गणित मे ही भेद होने के कारण १ महिने का भेद वर्षों से चल रहा है जिसे जैन परंपरा के साथ कोइ दिक्कत या ऐतराझ नहीं,** परंतु पंचांग में सभी ही परंपरा का समन्वय करना है, इसीलिए...प्रथम विकल्प में १ वर्ष = १२ मास (५२८ B.C. या ५२७ B.C. किस में प्रभु का निर्वाण ?) + १ अधिकमास (हिंदु या रोमन, कौनसी परंपरा का अधिकमास का गणित सत्य ?) इसका निर्णय किये बिना भिन्न–भिन्न परंपरा के **आपस के १३ मास** के भेद को सुलझाये बिना का पंचांग निर्माण किया है। जब की द्वितिय विकल्प में हिंदु–रोमन और अेफेमेरीझ डेटा के यह १३ महिने के भेद को दूर करने वी.सं. ४१९ तक २½ वर्ष में अधिक मास और उसके पश्चात् लिच्छवि शासन के शिलालेख द्वारा २½ या ३ साल के बाद अधिकमास को समाया है।

यह पुस्तक के **परिशिष्ट-१ P. No. 160** में दुसरे विकल्प से बनाया पंचांग दिया है। **अधिक मास जहां आयेगा वहां लौकिक पंचांग के साथ एक मास का भेद आयेगा। वरना १०/१५ घंटे का भेद ही दिखेगा।**

विदवज्जनों इन विकल्पों में से योग्य विकल्प पसंद करे ऐसी प्रार्थना...

६. इसमें अभी भी संशोधन की जगह है, किन्तु यह बिन्दु ९० से ९५% सत्य के निकट लगता है। इसलिए अभी **२२ जून–५२४ B.C. शुक्रवार से संस्कार सहित (तिथि और नक्षत्र दोनों का) पंचांग बनाकर संशोधन होना चाहिए।**

फिर से बता दें, कि यह **मात्र ठोस विचारणा है,** संशोधन है। अतीन्द्रिय तत्त्व तक शास्त्रचक्षु या मार्गानुसारी अर्थघटन द्वारा पहुँचने का प्रयास है, इसलिए फेर–बदल का स्थान है। जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडम्।

પરિશિષ્ટ-૧

નોંધ : ૧) વીર સં. ૪૧૯થી તિથિના માપમાં સંસ્કાર કરવા પૂર્વકનું પંચાંગ.
૨) ઇ.સં. ૨૦૦૦ સુધી અયન બિંદુ ચલણ ૪૩.૭ વિકળા, ત્યારબાદ ૫૦.૩ વિકળા. અયન બિંદુનું ચલન એ આધુનિક માન્યતા છે. માટે તે પ્રચલિત માન્યતાથીજ નક્કી કરેલ છે. ૩) શાસ્ત્રીય માન્યતાના પ્રયોગ આધારિત આ પંચાંગ ૨૫/૬/૨૦૨૧ થી ૩૧/૧૨/૨૦૨૨ સુધીનું છે.

પંચાંગ

VirSamvat	Vikram Samvat	Shastriya Month	Paksh	Tithi	TithiEndTime	TithiRemarks	SuryaNakshatra	SuryaNakshatra EndTime	ChandraNakshatra	Sunrise Time	Date	DayName
2547	2077	અષાઢ	સુદ	15	09:14:55.17 00				પૂ. ષાઢા ની સમાપ્તિ (16:28:2:654)	5:58	2021-06-25	Friday
2547	2077	અષાઢ	વદ	1	08:52:23.251 0	દ્વિતીય અષાઢ માસ				5:58	2021-06-26	Saturday
2547	2077	અષાઢ	વદ	2	08:29:51.332 0				ઉ. ષાઢા ની સમાપ્તિ (4:28:41:708) | અભિજીત ની સમાપ્તિ (12:0:9:148)	5:58	2021-06-27	Sunday
2547	2077	અષાઢ	વદ	3	08:07:19.413 0		આદ્રા ની સમાપ્તિ	02:31:21.981 0	શ્રવણ ની સમાપ્તિ (12:0:35:184)	5:59	2021-06-28	Monday
2547	2077	અષાઢ	વદ	4	07:44:47.494 0				ધનિષ્ઠા ની સમાપ્તિ (12:1:1:220)	5:59	2021-06-29	Tuesday
2547	2077	અષાઢ	વદ	5	07:22:15.575 0				શતભિષા ની સમાપ્તિ (0:1:14:238)	5:59	2021-06-30	Wednesday
2547	2077	અષાઢ	વદ	6	06:59:43.656 0				પૂ. ભાદ્રપદ ની સમાપ્તિ (0:1:40:274)	6:00	2021-07-01	Thursday
2547	2077	અષાઢ	વદ	7	06:37:11.737 0				ઉ. ભાદ્રપદ ની સમાપ્તિ (12:2:19:328)	6:00	2021-07-02	Friday
2547	2077	અષાઢ	વદ	8	06:14:39.818 0	9 નો ક્ષય (29:52:7:899)			રેવતી ની સમાપ્તિ (12:2:45:364)	6:00	2021-07-03	Saturday
2547	2077	અષાઢ	વદ	10	29:29:35:980				અશ્વિની ની સમાપ્તિ (12:3:11:400)	6:01	2021-07-04	Sunday
2547	2077	અષાઢ	વદ	11	29:7:4:61				ભરણી ની સમાપ્તિ (0:3:24:418)	6:01	2021-07-05	Monday
2547	2077	અષાઢ	વદ	12	28:44:32:142				કૃતિકા ની સમાપ્તિ (0:3:50:454)	6:01	2021-07-06	Tuesday
2547	2077	અષાઢ	વદ	13	28:22:0:223				રોહિણી ની સમાપ્તિ (12:4:29:508)	6:02	2021-07-07	Wednesday
2547	2077	અષાઢ	વદ	14	27:59:28:304				મૃગશીર્ષ ની સમાપ્તિ (12:4:55:544)	6:02	2021-07-08	Thursday
2547	2077	અષાઢ	વદ	30	27:36:56:385				આદ્રા ની સમાપ્તિ (0:5:8:562)	6:02	2021-07-09	Friday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	1	27:14:24:466				પુનર્વસુ ની સમાપ્તિ (12:5:47:616)	6:03	2021-07-10	Saturday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	2	26:51:52:547				પુષ્ય ની સમાપ્તિ (12:6:13:652)	6:03	2021-07-11	Sunday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	3	26:29:20:628				આશ્લેષા ની સમાપ્તિ (0:6:26:670)	6:04	2021-07-12	Monday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	4	26:6:48:709				મઘા ની સમાપ્તિ (0:6:52:706)	6:04	2021-07-13	Tuesday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	5	25:44:16:790				પૂ. ફાલ્ગુની ની સમાપ્તિ (0:7:18:742)	6:04	2021-07-14	Wednesday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	6	25:21:44:871				ઉ. ફાલ્ગુની ની સમાપ્તિ (12:7:57:796)	6:05	2021-07-15	Thursday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	7	24:59:12:952				હસ્ત ની સમાપ્તિ (12:8:23:832)	6:05	2021-07-16	Friday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	8	24:36:41:33				ચિત્રા ની સમાપ્તિ (12:8:49:868)	6:06	2021-07-17	Saturday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	9	24:14:9:114		પુનર્વસુ ની સમાપ્તિ	03:56:33.546 0	સ્વાતિ ની સમાપ્તિ (0:9:2:886)	6:06	2021-07-18	Sunday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	10	23:51:37.195 0				વિશાખા ની સમાપ્તિ (12:9:41:940)	6:07	2021-07-19	Monday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	11	23:29:05.276 0				અનુરાધા ની સમાપ્તિ (12:10:7:976)	6:07	2021-07-20	Tuesday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	12	23:06:33.357 0				જ્યેષ્ઠા ની સમાપ્તિ (0:10:20:994)	6:07	2021-07-21	Wednesday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	13	22:44:01.438 0		સૂર્યના સાયન વર્ષની સમાપ્તિ18:5:37:452		મૂળ ની સમાપ્તિ (0:10:47:30)	6:08	2021-07-22	Thursday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	14	22:21:29.519 0				પૂ. ષાઢા ની સમાપ્તિ (0:11:13:66)	6:08	2021-07-23	Friday
2547	2077	અષાઢ	સુદ	15	21:58:57.6 000				ઉ. ષાઢા ની સમાપ્તિ (12:11:52:120) | અભિજીત ની સમાપ્તિ (19:43:19:560)	6:09	2021-07-24	Saturday
2547	2077	શ્રાવણ	વદ	1	21:36:25.681 0				શ્રવણ ની સમાપ્તિ (19:43:45:596)	6:09	2021-07-25	Sunday
2547	2077	શ્રાવણ	વદ	2	21:13:53.762 0				ધનિષ્ઠા ની સમાપ્તિ (19:44:11:632)	6:10	2021-07-26	Monday
2547	2077	શ્રાવણ	વદ	3	20:51:21.843 0				શતભિષા ની સમાપ્તિ (7:44:24:650)	6:10	2021-07-27	Tuesday

गाजे–गाजे छे महावीरनुं शासन गाजे छे...

प्रभु, आपने ठाणांग सूत्र-२९ के माध्यम से बताया,

चंददिणे णं एगूणतीसं मुहुत्ते सातिरेगे मुहुत्तग्गेणं पण्णते ।।८।।

ज्योतिष करंडक के ४थे प्राभृत की १०५वी गाथा से बताते है,

अउणत्तीसं पुण्णा उ मुहुत्ता सोमतो तिही होइ ।

भागा दुगत्तीसं बावट्ठिकएण छेएणं ।।१०५।।

टुंकमें समान समय की प्रत्येक तिथि बताई है...

इ.स. १५७१ में जोहेनेस केप्लर नाम के

वैज्ञानिक ने भी साबित किया की खुदके केन्द्र की आजुबाजु परिभ्रमण करनेवाले

कोइ भी ग्रह का समान समय में समान क्षेत्रफल (कला) पसार होता है ।

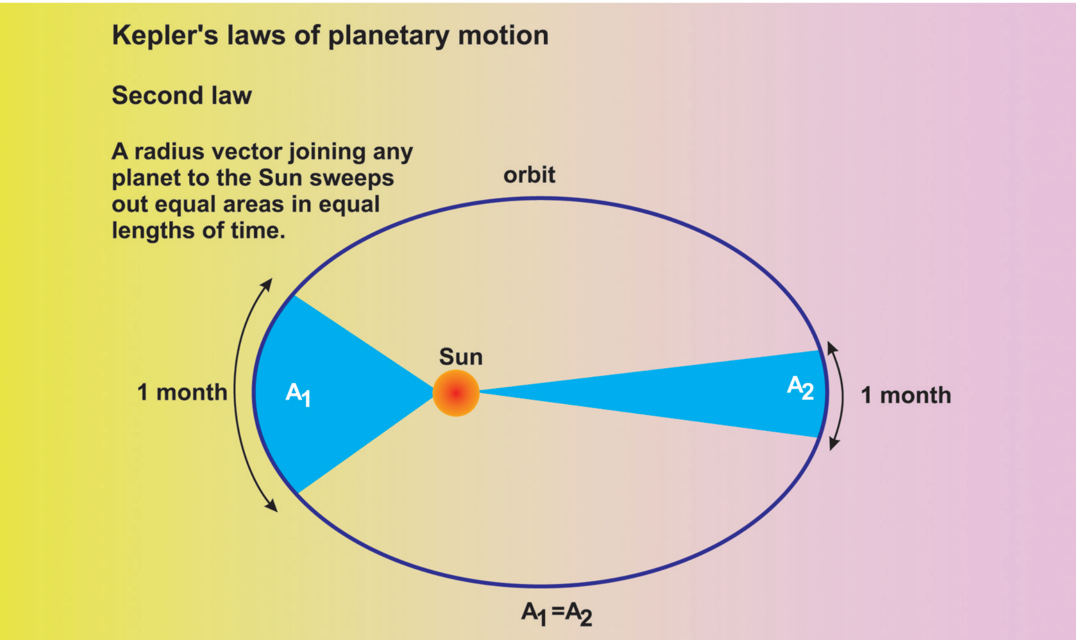

प्रभु यह पढके मन तुरंत बोल उठा

''तमेव सच्चं नि:संकं जं जिणेहिं पवेइयं ।।''

बस, इस तरह की अनेक बातें समजने पढीए

नक्षत्र-तिथि विचार-विमर्श

PRINTED BY :
SHUBHAY M. 98205 30299